प्रकीर्णक पुस्तकमाला—१२

अन्योक्तिकल्पद्रुम

प्रकीर्णक पुस्तकमाला—१२

कवि दीनदयाल गिरि-कृत

अन्योक्तिकल्पद्रुम

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९८७

मूल्य ।=)

Published by
K. Mittra,
at the Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

भूमिका

दीनदयाल गिरि वर्त्तमान काल के हिंदी के उत्कृष्ट कवियों में हुए हैं। इनकी रचना-शैली मनोहर और रसपूर्ण है। सबसे बढ़कर बात तो इनकी कविता में यह है कि इनकी भाषा बहुत चलती हुई और स्वच्छ है, उसमें व्यर्थ शब्दों की भरमार नहीं है। जितने शब्द भावनिर्वाह के लिये आवश्यक हैं उतने ही का प्रयोग हुआ है।

इनके जीवन के संबंध में लोगों को इसके अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है कि ये काशी-निवासी थे। शिवसिंह-सरोज-कार ने इनके विषय में केवल इतना लिखा है कि "ये कवि बड़े महान् पंडित संस्कृत के थे और भाषा साहित्य में अन्योक्ति-कल्पद्रुम नाम ग्रंथ बहुत ही सुंदर बनाया है और अनुराग-बाग और बागबहार ये दो ग्रंथ भी इनके बहुत विचित्र हैं।" अन्योक्तिकल्पद्रुम की भूमिका में पं० विजयानंद त्रिपाठी ने लिखा है कि "ये काशीपुरी के पश्चिम द्वार देहली-विनायक पर रहते थे*। २५ वर्ष के लगभग इनको काशीवास प्राप्त हुआ।"

---

* इतना परिचय कवि ने स्वयं अनुरागबाग में दिया है—

सुखद देहली पै जहाँ बसत विनायक देव।
पश्चिम द्वार उदार है कासी को सुर सेव॥

अन्योक्तिकल्पद्रुम में केवल इतना ही लिखा है—

सोभित तिहि औसर बिषे बसि कासी सुखधाम।

यह भूमिका सं० १९४७ की लिखी हुई है अतः इसके अनुसार इनकी मृत्यु सं० १९२२ के लगभग हुई। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं था।

त्रिपाठीजी ने काशी में इनका ठिकाना जो बतलाया उससे इनके संबंध में खोज करने में बड़ी सहायता मिली। यदि वे इतना न लिख देते तो किसी बात का पता चलना कठिन ही था। इस सूत्र के आधार पर जो कुछ पता चला है वह नीचे लिखा जाता है।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि ये गृहस्थ नहीं थे, दसनामी संन्यासियों में थे। इनके जन्मकाल का कुछ पता नहीं चलता। जाति का भी ठीक निश्चय नहीं, इतना अवश्य निश्चय है कि बनारस के आसपास के किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल में इनका जन्म हुआ था। वहीं से इनके गुरु ने इन्हें प्राप्त किया। इनके गुरु कुशा गिरि सेंगरे (मालदा के पास) से देहली-विनायक आए और वहाँ जमींदारी लेकर बस गए। कुशा गिरि के तीन शिष्य थे—दीनदयाल गिरि, स्वयंवर गिरि (एकाक्ष) और रामदयाल गिरि। कुशा गिरि बहुत ऋण छोड़कर मरे थे। इससे उनकी मृत्यु के उपरांत देहली-विनायक के पास की सारी जमीन नीलाम हो गई। यह जमीन अब काशीवासी गोकुलदास विट्ठलदास (गुजराती) के घराने में है। बरना के तट पर जो प्रसिद्ध रामेश्वर मंदिर है उसमें भी देहली-विनायक के महंत का कुछ अंश था। कुशा गिरि के मरने के पीछे तीनों

चेलों में अनबन हुई और वे बहुत दिनों तक लड़ते रहे। लड़ानेवाले आस-पास के जमींदार थे जो बची खुची जमीन हड़प करना चाहते थे। दीनदयाल गिरि को इस बात का बड़ा दु:ख रहता था। जमींदारी आदि बिक जाने पर इन्हें बहुत खिन्न देख अमेठी के तत्कालीन राजा साहब ने इन्हें अपने यहाँ चलकर रहने को कहा। पर ये स्वतंत्र वृत्ति के मनुष्य थे, इन्होंने इसे स्वीकार न किया। इनका यह पद्य उसी समय का कहा हुआ है—

पराधीनता दुख महा सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै कनक पींजरे दीन ॥

देहली-विनायक के पास मटौली गाँव में इनका मठ था जहाँ ये बराबर रहे। यह मठ अब गिरकर खँडहर हो गया है। इस मठ की एक दीवार पर इनका चित्र गेरू से बना हुआ था पर अब उस दीवार ही का पता नहीं है, तब चित्र कहाँ! केवल एक कुँआ अब रहा गया है।

यद्यपि ये मठधारी शैव संन्यासी थे, पर सांप्रदायिक दुराग्रह इनमें नहीं था। ये बहुत सहृदय और उदार थे, इससे कृष्ण की भक्ति का संस्कार भी इनमें पूरा पूरा था जैसा कि इनकी रचनाओं से प्रकट होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्रजी के पिता बाबू गोपालचंद्रजी के साथ इनका बहुत कुछ सौहार्द था, इससे हिंदी काव्य की ओर इनकी रुचि हुई। इन्होंने काशी में आकर संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया, पर

किससे और कहाँ, यह ज्ञात नहीं। कविता इनकी दिन दिन प्रौढ़ होती गई।

स्वभाव इनका अत्यंत सरल और विनोदप्रिय था। ये बात बात में लोकोक्तियों तथा श्लेष का प्रयोग करके लोगों को हँसाते थे। दया भी इनमें बड़ी थी। दूसरे का दुःख ये नहीं देख सकते थे। एक बार अकाल में इनके यहाँ एक बहुत दीन और दुखी मनुष्य आया। इनके पास धन आदि तो रहा नहीं, पर उसे इन्होंने अच्छी तरह भोजन कराया और घर में जो कुछ मिला सब उसे दे दिया। आत्माभिमान इनमें इतना था कि कितने ही दुःख में रहने पर भी ये किसी से कुछ याचना नहीं करते थे। काशीनरेश तथा और राजा महाराजा जो इनकी विद्या और गुणों से परिचित थे, प्रच्छन्न रूप से इनकी सहायता समय समय पर करते थे। ये जैसे गुणी थे वैसे ही गुणग्राही भी थे। कवियों का आना जाना इनके यहाँ बराबर लगा रहता था और ये उनका यथोचित आदर सत्कार भी करते थे। इनकी आर्थिक दशा अच्छी न रहने का एक कारण यह भी था। पर और मठधारी महंतों के समान कुमार्ग में इन्होंने एक पैसा नहीं लगाया। इनका चरित्र बहुत निर्मल था। ये प्रायः घोड़े पर चढ़कर निकलते थे और गेरुए रंग की कत्तनीदार पगड़ी बाँधते थे। घोड़े की पहचान इन्हें अच्छी थी।

काशी से इन्हें बहुत प्रेम था। ये काशी छोड़ना नहीं चाहते थे। राज अमेठी आदि के बुलाने पर इनके न जाने का एक

कारण यह भी था। वैराग्यदिनेश में काशी के प्रति इनकी प्रीति और भक्ति टपकी पड़ती है। अस्तु, कहा जाता है कि मृत्यु-पर्य्यंत ये काशी में ही रहे। यहाँ मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन-विनायक पर इनका परलोकवास हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि पिछले दिनों में ये सेंगरे चले गए और वहीं परम-धाम को प्राप्त हुए पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि ये बहुत वृद्ध होकर मरे। वृद्धा-वस्था का इन्होंने चित्र भी अच्छा खींचा है। अस्तु, पंडित विजयानंद त्रिपाठी ने इनका मृत्युकाल जो सं० १९२२ के लग-भग बतलाया है वह निश्चित समझना चाहिए।

इनके बनाए पाँच ग्रंथ हैं। पहला ग्रंथ "अनुरागबाग" है, जो संवत् १८८८ में बना। दूसरा ग्रंथ दृष्टांत-तरंगिणी है जो संवत् १८७९ में बनी। तीसरा ग्रंथ अन्योक्तिमाला है। इसके निर्माण-काल का पता नहीं चलता। चौथा ग्रंथ वैराग्यदिनेश है जो संवत् १९०६ में बना। अंतिम ग्रंथ अन्योक्तिकल्पद्रुम है। इसका निर्माण-काल संवत् १९१२ है। इसे अन्योक्तिमाला का परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण मानना चाहिए। इस विवरण से यह प्रकट होता है कि दीनदयाल गिरि का कविता-काल संवत् १८७९ में आरंभ और संवत् १९१२ में समाप्त होता है। दृष्टांत-तरंगिणी की रचना को देखकर यह मानना पड़ता है कि यह कवि की आरंभिक कविता नहीं है। इससे यह अनु-मान किया जा सकता है कि कवि ने कविता लिखने का अभ्यास

कम से कम १०, १५ वर्ष पहले प्रारंभ किया था। शिवसिंह-सरोज में इनके एक और ग्रंथ "बागबहार" का नाम दिया है। पर ऐसे किसी ग्रंथ का अब तक पता नहीं चला है। मेरी समझ में "अनुरागबाग" और "बागबहार" एक ही ग्रंथ के दो नाम हैं, ये दो स्वतंत्र ग्रंथ नहीं हैं।

अन्योक्तिकल्पद्रुम की भाषा अत्यंत सरस और प्रौढ़ है, भावों में कोई बात ऐसी नहीं आई है जो आपत्तिजनक हो। अन्योक्तियों का संग्रह होने के कारण इसमें श्लेषालंकार की प्रचुरता है। यद्यपि गिरिजी का कविता-कौशल उनके अन्य ग्रंथों में अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है, पर अन्योक्तिकल्पद्रुम उनका अंतिम ग्रंथ होने के कारण कवि की प्रौढ़ शक्ति का उसमें साक्षात् प्रत्यक्षीकरण होता है। यह कल्पद्रुम चार शाखाओं में विभक्त है। पहली शाखा में ६९ पद्य हैं जिनमें ऋतुओं, प्राकृतिक शक्तियों तथा पक्षियों आदि पर अन्योक्तियाँ हैं। दूसरी शाखा में ८२ पद्य हैं जिनमें धातुओं, वृक्षों, विहंगों, पशुओं आदि का वर्णन है। तीसरी शाखा में विशेष विशेष जातियों तथा व्यवसाय के मनुष्यों और स्त्रियों, अंगों आदि पर ३७ पद्य हैं और चौथी तथा अंतिम शाखा में भिन्न भिन्न भावों तथा मानसिक शक्तियों पर ८४ पद्य हैं।

दीनदयाल गिरि के इस अन्योक्तिकल्पद्रुम नामक ग्रंथ का बहुत प्रचार और आदर है और है भी यह इस योग्य।

अन्योक्तियों के विषयों की सूची

अन्योक्तिकल्पद्रुम

दोहा

यह कल्पद्रुम बुधसुखद, अरथ अनूप उदार।
बिरच्यो दीनदयाल गिरि, अभिमत-फल-दातार ॥१॥

मंगलाचरण। कुंडलिया

बंदौं मंगलमय विमल, व्रज-सेवक सुख-दैन।
जो करि-वर-मुख मूक हौ, गिरा नचाव सुखैन ॥
गिरा नचाव सुखैन, सिद्धिदायक सब लायक।
पसुपति-प्रिय हिय-बोधकरन निरजर-गन-नायक ॥
बरनै दीनदयाल दरसि पदद्वंद अनंदौं।
लंबोदर मुदकंद देव दामोदर बंदौं ॥२॥

कल्पद्रुम

दानी हौ सब जगत में एकै तुम मंदार।
दारन दुख दुखियान के अभिमत-फल-दातार ॥
अभिमत-फल-दातार देवगन सेवैं हित सों।
सकल संपदा सोह छोह किन राखत चित सों ॥
बरनै दीनदयाल छाँह तव सुखद बखानी।
ताहि सेइ जो दीन रहै दुख तौ कस दानी ॥३॥

षट्ऋतु-वर्णन तत्र बसंत

हितकारी ऋतुराज तुम साजत जग आराम।
सुमन सहित आसा भरो दलहिं करौ अभिराम॥
दलहिं करौ अभिराम कामप्रद द्विज गुन गावैं।
लहि सुबास सुखधाम बात बर ताप नसावैं॥
बरनै दीनदयाल हिये माधव धुनि प्यारी।
श्रवन सुखद सुक-बैन बिमल बिलसैं हितकारी॥४॥

लूटे साखिन अपत करि, सिसिर सुसजे बसंत।
दै दल सुमन सुफल किए, सो भल सुजस लसंत॥
सो भल सुजस लसंत सकल द्विजगन गुन गावैं।
अमल कमल जल जीव हंस हरि बर सुख पावैं॥
बरनै दीनदयाल दुसह दुख तें द्रुम छूटे।
भे तुरंत विकसंत अंत अतिसै जे लूटे॥५॥

तौ लौं हे ऋतुराज नहिं कोकिल काग बिचार।
श्याम श्याम रँग एक से सोहत एकै डार॥
सोहत एकै डार काक कछु बाक न बोलै।
ऐंड़ो रहै निसंक तासु हाँसी करि डोलै॥
बरनै दीनदयाल नहीं गुन आवत जौ लौं।
काक कोकिला ज्ञान जात नहिं जानो तौ लौं॥६॥

ग्रीष्म

ग्रीषम तुम ऋतुराज के पाले दीन सुसाखि।
तिन को दाहत हौ कहा दावानल में माखि॥

दावानल में साखि जारि फिरि राख उड़ाई ।
उन दोनन की दसा देखि नहिं दाया आई ॥
बरनै दीनदयाल द्विजन तापत क्यों भीखम ।
मित्रहु तुमरे संग चढ़ै वृष दारुन ग्रीषम ॥ ७ ॥

सुखिया जे जे तब रहे लहि ऋतुराज उमंग ।
ते सब अब दुखिया भए हे ग्रीषम तुव संग ॥
हे ग्रीषम तुव संग साखि सर सूखि गए हैं ।
बिकल कमल द्विजराज सकल छविहीन भए हैं ॥
बरनै दीनदयाल रह्यो जगप्रान जु सुखिया ।
सोऊ तपि दुखदानि भयो जो हो अति सुखिया ॥ ८ ॥

पावस

पावस ऋतु सुखदानि जग तुम सम कोऊ नाहिं ।
चपलाजुत घनस्याम नित बिहरत हैं तव माहिं ॥
बिहरत हैं तव माहिं नीलकंठहु सुखदाई ।
अंबर देत सुहाय द्विजन की करत सहाई ॥
बरनै दीनदयाल सकल सुख तो सुखमा-बस ।
एकै हंस उदास रहै काहे हे पावस ॥ ६ ॥

शरद

पाई छवि द्विजराज कवि गुरुवर अंबर सोह ।
दरे दरद हे सरद हिय करे मोद संदोह ॥
करे मोद संदोह धरे गुन सज्जन केरे ।
कुवलय खरे बिकास भरे भासैं चहुँ फेरे ॥

बरनै दीनदयाल जगत के तुम सुखदाई।
करिए कहा प्रशंस हंस बिलसैं छवि पाई ॥१०॥

हेमंत

आवत ही हेमंत तो कंपन लगो जहान।
कोक कोकनद भे दुखी अहित भए जगप्रान ॥
अहित भए जगप्रान संग जबहीं तुव पाए।
दुखद भए द्विजराज मित्र निज तेज घटाए ॥
बरनै दीनदयाल दीन द्विज-पाँति कँपावत।
कामिन को भो मोद एक ही तो जग आवत ॥११॥

शिशिर

गाये सुजस समूह तो कविराजन अवदात।
फैली महिमा रावरी महिमंडल में ख्यात ॥
महिमंडल में ख्यात फाग रागन कौं गावैं।
शिशिर सु आप प्रसाद जगत सबही सुख पावैं ॥
बरनै दीनदयाल कुंद मिस तो जस छाए।
एक बिचारे पात तिने उतपात लगाए ॥१२॥

पंचतत्त्वविषये अन्योक्तिः। आकाश

आपै व्यापक जगत के आप सरिस कोउ नाहिं।
सकल लोक रचना सजै हे अकाश तुव माहि ॥
हे अकाश तुव माहिं मित्र द्विजराज विराजैं।
तुमैं बीच सुचि जानि आनि घनस्यामहु छाजैं ॥

बरनै दीनदयाल जाय जस बरनो का पै।
गहो न संग उपाधि रहो अति निरमल आपै ॥१३॥

पवन

जहँ धरि पीत पराग पट वर सम कियो विहार।
तिहि बन पवन जती भयो रमत रमाए छार॥
रमत रमाए छार घार ग्रीषम दव लागे।
दुख में मधुकर सखा संग सबही तजि भागे॥
बरनै दीनदयाल रही छबि कुसुमाकर भरि।
दूलह बन्यो समीर रम्यो पट पीरो जहँ धरि॥ १४॥

जिन तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम।
तिन भंजन करि आपनो कियो प्रभंजन नाम॥
कियो प्रभंजन नाम बड़ो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि दियो तब झोंकि झकोरी॥
बरनै दीनदयाल सेउ अब खल! थल मरु को।
लै सुख सीतल छाँह तासु तोरयो जिन तरु को॥ १५॥

लागी भूति अगेह नित अलिगन सिख्य विसेख।
सरल साल भंजत मरुत करनी खल मुनि-वेख॥
करनी खल मुनि-वेख फिरै भरमत सब जग को।
नहीं छमा में रहै अधर पथ गहै कुमग को॥
बरनै दीनदयाल बनो जग प्रान विरागी।
जम आसा तें रमै अहो विरही दुख लागी॥ १६॥

अनल

भीखन दुसह सुभाव तुव सुनो अनल जग माहिं।
करत कोटि अपराध है। तऊ तजत कोउ नाहिं॥
तऊ तजत कोउ नाहिं बगर पुर नगर जरावत।
हित सों बल्लभ मानि तुमैं ढूँढ़न को जावत॥
बरनै दीनदयाल तेज सब करैं निरीखन।
तुम बिन सरै न काज जदपि जग हौ अति भीखन॥१७॥

जल

हे जल वेग तरंग तें करै विलग मति मीन।
ये तो तेरे बिरह तें ह्वैहैं प्रान विहीन॥
ह्वैहैं प्रान विहीन देखि दसरथ को बानो।
प्रिय को देख्यो नाहिं प्रान को कियो पयानों॥
बरनै दीनदयाल नहीं जिन प्रेम किए पल।
ते किमि जानैं पीर वियोगीजन की हे जल॥१८॥

भूतल

भूतल तो महिमा बड़ी फैल रही संसार।
छमासील को कहि सकै सहत सकल के भार॥
सहत सकल के भार धराधर धीर धरे हो।
पारावार-अपार-धार सिर क्रोट करे हो॥
बरनै दीनदयाल जगो जग है जस ऊजल।
सब की छमत गुनाह नाह तुम सब के भूतल॥१९॥

दिवाकर

लीने आभा आपनी हे अंवक-आधार।
दीजै दरसन प्रगटि कै तम दुख दलो अपार॥
तम दुख दलो अपार निसाचर गाजि रहे हैं।
भूल-दीप खद्योत उलूक विराजि रहे हैं॥
बरनै दीनदयाल कोकनद कोकहु दीने।
कब ह्वैहो हरि उदय तुमै बिन लोक मलीने॥२०॥

निसाकर

मैलो मृग धारे जगत नाम कलंकी जाग।
तऊ कियो न मयंक तुम सरनागत को त्याग॥
सरनागत को त्याग कियो नहिं ग्रसे राहु के।
लिए हिए मैं रहो तजो नहिं कहे काहु के॥
बरनै दीनदयाल जोति मिस सो जस फैलो।
है हरि को मन सही कहैं नर पामर मैलो॥२१॥

दानी अमृत के सदा देव करैं गुनगान।
सुनो चंद वंदैं तुमैं मोद-निधान जहान॥
मोद-निधान जहान संभु सिर ऊपर धारैं।
देखि सिंधु हरखाय निकाय चकोर निहारैं॥
बरनै दीनदयाल सबै को तुम सुखखानी।
एक चोर बरजोर घोर निंदैं दुखदानी॥२२॥

केतौ सोमकला करौ करौ सुधा को दान।
नहीं चंद्रमनि जो द्रवै यह तेलिया पखान॥

यह तेलिया पखान बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटीं याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी॥
बरनै दीनदयाल चंद तुम ही चित चेतौ।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजे केतौ॥२३॥

पूरे जदपि पियूख तें हरसेखर आसीन।
तदपि पराए बस परे रहो सुधाकर छीन॥
रहो सुधाकर छीन कहा है जो जग वंदत।
केवल जगत बखान पाय न सुजान अनंदत॥
बरनै दीनदयाल चंद हौ हीन अधूरे।
जौ लगि नहिं स्वाधीन कहा अमृत तें पूरे॥२४॥

दीपक

मित्र नाम को दीप लघु करै कहा रे नास।
वे बरु तो अभिधान को अधिकौ करत प्रकास॥
अधिकौ करत प्रकास भलाई उनकी छाई।
त्रिभुवन भवन मँझार पूजि सब करैं बड़ाई॥
बरनै दीनदयाल करै तू कौन काम को।
रही कारिखी छाय जराय न मित्र नाम को॥२५॥

रत्नदीपक

भाजन सहित सनेह की करत चाह तुम नाहिं।
परहित देत प्रकास बर रतनदीप जग माहिं॥
रतनदीप जग माहिं तुमै चल-बात न परसै।
अविचल बिमल सुभाव भाल कालिमा न दरसै॥

बरनै दीनदयाल लसै तातें सिर राजन।
तूल गुबतियाँ त्यागि भए सत-सोभा-भाजन ॥२६॥

नीरद

दीजै जीवन जलद जू दीन द्विजन को देखि।
इनको आसा रावरी लागी अहै विसेखि॥
लागी अहै विसेखि देहु कुल कीरति छैहै।
या चपला है चला लला धौं कित को जैहै॥
बरनै दीनदयाल आप जग में जस लीजै।
परम धरम उपकार द्विजन को जीवन दीजै॥२७॥

करिए सीतल हृदय बन सुमन गयो मुरझाय।
सुनो विनय घनस्याम हे सोभा सघन सुहाय॥
सोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै।
नीलकंठ प्रिय पालि सरस जग में जस लीजै॥
बरनै दीनदयाल तृषा द्विजगन की हरिए।
चपला सहित लखाय मधुर सुर कानन करिए॥२८॥

भीषन ग्रीषम ताप तें भयो झाँवरो छीन।
है यह चातक-डावरो अनुग रावरो दीन॥
अनुग रावरो दीन लीन आधीन तिहारे।
कहै नाम बसु जाम रहै घनस्याम निहारे॥
बरनै दीनदयाल पालिए लखि तप तीखन।
सरी सरोवर सिंधु काहु इन माँगी भीख न॥२९॥

जग को घन तुम देत हौ गँजिकै जीवन दान।
चातक प्यासे रटि मरे तापर परे पखान ॥
तापर परे पखान बानि यह कौन तिहारी।
सरित सरोवर सिंधु तजे इन तुमें निहारी ॥
बरनै दीनदयाल धन्य कहिए यहि खग को।
रह्यो रावरी आस जन्मभरि तजि सब जग को ॥३०॥

आयो चातक बूँद लगि सब सर सरित बिसारि।
चहियत जीवनदानि! तिहि निरदै पाहन मारि?
निरदै पाहन मारि पंख बिन ताहि न कीजै।
याहि रावरी आस, प्यास हरि जग जस लीजै ॥
बरनै दीनदयाल दुसह दुख आतप तायो।
तृषावंत हित-पूर दूर तें चातक आयो ॥३१॥

जिन संसिन को सींचि तुम करी सु-हरी बहार।
तिनको दई न चाहिए हे घन! पाहन मार ॥
हे घन पाहन मार भली यह कही न बेदन।
गरलहु को तरु लाय न चहिए निज कर छेदन ॥
बरनै दीनदयाल जगत बसिबो द्वै दिन को।
लेहु कलंक न कंद पालि दलि जिन संसिन को ॥३२॥

भूले अब घन! तुम किते प्रथमै याको पालि।
लखत रावरी राह को सूखि गयो यह सालि ॥
सूखि गयो यह सालि अहो अजहूँ नहिं आए।
दै दै नाहक नीर सिंधु में सुदिन गँवाए ॥

बरनै दीनदयाल कहा गरजत हौ फूले।
समै न आए काम, काम कौने, भ्रमि भूले ॥३३॥

चपला संगति तें भयो घन! तव चपल सुभाव।
ता छिन तें बरखन लगे अमृत को तजि ग्राव ॥
अमृत को तजि ग्राव हनत को तुमैं निवारै।
अहो कुसंग प्रचंड काहि जग में न बिगारै ॥
बरनै दीनदयाल रहैगि न, है यह सचला।
ता बस अजस न लेहु, देहु चित, है चल चपला ॥३४॥

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहिं।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाहिं ॥
अंकुर जमिहै नाहिं बरख सत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहिं परखै।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै ॥३५॥

समुद्र

रतनाकर! महि माहँ तुम अति अथाह गंभीर।
हैं प्रवाह दुस्तर भरे ग्राह प्रबल तो नीर ॥
ग्राह प्रबल तो नीर तीर पैठत बुध हारे।
धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे ॥
बरनै दीनदयाल जौन मरजीवा जाकर।
लै मुकुतन को कढ़ै सोइ धनि हे रतनाकर ॥३६॥

गरजे बातन तें कहा धिक्क नीरधि! गंभीर।
विकल बिलोकैं कूप-पथ तृषावंत तो तीर॥
तृषावंत तो तीर फिरैं तुहि लाज न आवै।
भँवर लोल कल्लोल कोटि निज बिभौ दिखावै॥
बरनै दीनदयाल सिंधु तोकों को बरजै।
तरल तरंगी ख्यात वृथा बातन तें गरजै॥ ३७॥

नद

सिंधु बड़ाई भूलिजनि, नद! नमि कै चलि चाल।
सहिबो परिहै खार है बड़वानल की ज्वाल॥
बड़वानल की ज्वाल नाम रूपहु मिटि जैहै।
ह्वैहै अधिक अपीव जीव कोउ नीर न छ्वैहै॥
बरनै दीनदयाल ब्याज की कहा चलाई।
जैहै मूल नसाय पाय नद सिंधु बड़ाई॥ ३८॥

हे नद ढाहै तरुन जनि पावस प्रभुता पाय।
ये तो तेरे तीर पै सोभा रहे बनाय॥
सोभ रहे बनाय छाय फल फूलन तें अति।
सीत सुगंध समीर धीर गति हरैं पथिक मति॥
बरनै दीनदयाल त्रिबिध खग रटैं भरे मद।
ये सुख रहिहैं नाहिं गए इन तरु के हे नद॥ ३९॥

नदी

बहु गुन तो में हैं धुनी! अति पुनीत तो नीर।
राखति यह ऐगुन बड़ो बक मराल इक तीर॥

वक मराल इक तीर नीच ऊँचो न पिछानति।
सेत सेत सब एक, नहीं ऐगुन गुन जानति॥
बरनै दीनदयाल चाल यह भली न है सुन।
जग में प्रगट, नसाहिं एक ऐगुन तें बहुगुन॥४०॥

सर

कोलाहल सुनि खगन के सरवर! जनि अनुरागि।
ये सब स्वारथ के सखा दुरदिन दैहैं त्यागि॥
दुरदिन दैहैं त्यागि तोय तेरो जब जैहै।
दूरहि तें तजि आस पास कोऊ नहिं ऐहै॥
बरनै दीनदयाल तोहि मथि करिहैं काहल।
ये चल छल को मूल भूल मति सुनि कोलाहल॥४१॥

आए ग्रीषम देखिहौं लघु सर! तेरी सान।
कहा करै एतो बड़ो पावस पाय गुमान॥
पावस पाय गुमान भरो अति भूलि रह्यो है।
भेक बकन के संग उमंगन फूलि रह्यो है॥
बरनै दीनदयाल दिना दस के चलि जाए।
तब देखिहौं तरंग तोय वह ग्रीषम आए॥४२॥

सर! तोमैं खरसे बसे भेकन हित बक वंस।
सारस हैं सारस न हैं तातें रसैं न हंस॥
तातें रसैं न हंस तोहि तजि दूरि गए हैं।
तोको मानि मलीन नहीं मनलीन भए हैं॥

बरनै दीनदयाल बंकन हटि तू बरजो मैं।
सरसैं समुझि न हंस कुसंगति को सर तो मैं ॥४३॥

कवित्त

अमल अनूप जलं, मनिमै निसेनी जासु,
थल को बखान सु तो हुतो नर वर मैं।
मीन के विलास लहरीन के प्रकास जामें
लसी 'दीनद्याल' ऐसी प्रभा ना अपर मैं॥
चितै रह्यो चंचरीक चारु कंज कलिका को
हंस सरदागम रमन गो अधर मैं।
सर मैं लगे हैं अवसर मैं समुझि यह
सूकर बिहार करैं अहो तिहि सर मैं ॥४४॥

कमल

सुनो अरविंद हे मलिंद बिन सजै नाहिं
केलि मल-कीटन की रावरे बितान मैं।
जानैं कहा मंद ये सुगंध मकरंद गुन
गानैं 'दीनद्याल' तब माधुरी जहान मैं॥
तेऊ यह कला लखि भला नहिं कहैं अब
मूँदि लेहु मुख गिने जाहुगे मलान मैं।
हेरि हंस ओर फेरि खोलियो भए तें भोर
कीजिए सुजान बात भली जो महान मैं ॥४५॥

कुंडलिया

ह्वारो है हे कंज ! फँसि चंचरीक तुव माहिं ।
याको नीके राखिए दुखित कीजिए नाहिं ॥
दुखित कीजिए नाहिं दीजिए रस धरि आगे ।
एक रावरे हेत सबै इन सौरभ त्यागे ॥
बरनै दीनदयाल प्रेम को पैंड़ो न्यारो ।
वारिज बँध्यो मलिंद दारु को बेधनिहारो ॥४६॥

दीने ही चोरत अहो ! इन सम चोर न और ।
इन समीर तें कंज ! तुम सजग रहो या ठौर ॥
सजग रहो या ठौर भौंर रखिए रखवारे ।
नातो परिमल लूटि लेहिंगे सबै तिहारे ॥
बरनै दीनदयाल रहो ह्वै मित्र अधीने ।
भली करत हो रैन कपाट रहत हो दीने ॥४७॥

मधुकर

सेवन करि अतिमुक्त को अलि ! पलास मति सेव ।
भ्रमत सदा तम रूप है गहन विकल या भेव ॥
गहन विकल या भेव देख बेला बर जाती ।
गए न मिलिहै फेरि रहैगो पीटत छाती ॥
बरनै दीनदयाल सेइ कै सोभित देवन ।
कोऊ बहुर मलीन भूत को करै न सेवन ॥४८॥

होत उजागर वन बगर मधुप! मलिन तव आस ।
तजि माधवी-सुप्रीति को विहरत पास पलास ॥

विहरत पास पलास बास नहिं मोहत कामैं ?
निरस कठोर छलीक छलन की लाली जामैं ॥
बरनै दीनदयाल कहैं कवि जे मतिसागर।
यथा नाम अरु रूप तथा गुन होत उजागर ॥४९॥

सेमर मैं भरमै कहा ह्याँ अलि कछू न बास।
कमल मालती माधवी सेइ न पूरी आस ॥
सेइ न पूरी आस बास बन हेरत हारो।
सुरसरि बारि बिहाय स्वाद चाहै जल खारो ॥
बरनै दीनदयाल कहा खटपद ये कर मैं।
हैं पग पसु तें ड्योढ़ रमै तातें सेमर मैं ॥५०॥

एकै नाम न भूलि अलि! इ तो कथन मंदार।
वह औरै मंदार है करनी जासु उदार ॥
करनी जासु उदार देत अभिमत फल वे तो।
याने ठगे सुकादि कला करि हारे केतो ॥
बरनै दीनदयाल सुखद गुन उन्हें अनेकै।
यामैं फोकट नाम अडंबर सुनियत एकै ॥५१॥

सोई विपिन विलोकिए हे मधुकर! इहि बेर।
हा! छबि दही निदाघ अब रही राख की ढेर ॥
रही राख की ढेर जहाँ देखी वह सोभा।
लता सुमनमय देखि सु-मन तेरो जह लोभा ॥
बरनै दीनदयाल अहो दैवी गति जोई।
वहै भँवर तू भूलि भँवैं न, विपिन यह सोई ॥५२॥

भौंरे ! भूलि न वे-भरम लखि इक सोभित भेख ।
कढ़िगो सौरभ सुमन तें रही लालिमा सेस ॥
रही लालिमा सेस कहूँ मकरंद न यामैं ।
पौन पराग उड़ाय गयो कहु मोहत कामैं ॥
बरनै दीनदयाल साँझ ढिग आई बैरे ।
चले बिहंग बसेर, कहा अब भूले भौंरे ॥५३॥

आई निसि अलि ! कमल तें क्यों नहिं होत उदास ।
नहिं ह्वैहै छन एक में सुखद अंत की बास ॥
सुखद अंत की बास नहीं, बरु बंधन पैहै ।
ऐहै कुंजर जबै सखाजुत तो को खैहै ॥
बरनै दीनदयाल भलो बहु लोभ न भाई ।
तजि के रस की आस चलो अब तो निसि आई ॥५४॥

लै पल एक सुगंध अलि ! अपनो मानि न भूल ।
लैहै साँझ सबेर में वह माली यह फूल ॥
वह माली यह फूल किते दिन लोढ़त आयो ।
फूले फूले लेत कली सब सोर मचायो ॥
बरनै दीनदयाल लाल लखि फँसै न है छल ।
लगी बाग में आग, भाग रे गंधहि लै पल ॥५५॥

बैरे ! लखि कै लालिमा हे भौंरे ! मति भूल ।
हैं छलमय, पल के, असद ये कागद के फूल ॥
ये कागद के फूल सुगंध मरंद न यामैं ।
मृदु माधुरी पराग नहीं अनुरागत कामैं ॥

बरनै दीनदयाल चेत चित मैं इहि ठौरे।
लुटि जैहै यह बाग छटा छन की है, बौरे ॥५६॥

देखत ना ग्रीषम बिषम इहि गुलाब की ओरि।
सुनो अली ! यह नहिं भली ह्वैहैं कली बहोरि॥
ह्वैहैं कली बहोरि तबै तुम पायन परिहौ।
चायन कों करि काह वकायन मैं सिर मरिहौ॥
बरनै दीनदयाल रहो हो पीतम पेखत।
यहै मीत की रीति एक से सुख दुख देखत ॥५७॥

भौंरा अंत बसंत के है गुलाब इहि रागि।
फिरि मिलाप अति कठिन है या बन लगे दवागि॥
या बन लगे दवागि नहीं यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात बड़ो दुख तात सहैगो॥
बरनै दीनदयाल किते दिन फिरिहै दौरा।
पछितैहै कर दिए गए रितु पीछे भौंरा ॥५८॥

तौ लौं अलि ! तू बिहरि लै जौ लौं मित्र प्रकास।
पीछे बाँधो जायगो रजनी नीरज पास॥
रजनी नीरज पास बँधे फिरि स्वाँस न ऐहै।
यह तो विधि को तात, कला इत नाहिं चलैहै॥
बरनै दीनदयाल सुमन सेयो कइ सौ लौं।
बुड़्यो कोकनद नहीं, रही चतुराई तौ लौं ॥५९॥

श्रीहित स्याम ! बने छली, भली पीत छबि गात।
अली ! कला निसि नहिं चली गह्यो बली विधि-तात॥

गह्यो बलो बिधि-तात बात वह जात रही है ।
जो जन औरहि छलै निदान छलात वही है ॥
बरनै दीनदयाल मित्र बिन जैहौ अब कित ।
तब तो रचे प्रपंच रूप करि कपटी ओहित ॥६०॥

हंस

कीजै गमन सुमानसर यह दुखदायक ताल ।
हंस-बंस-अवतंस हौ मौन गहौ इहि काल ॥
मौन गहौ इहि काल काक बक खल या ठावैं ।
अति कठोर बरजोर सोर चहुँओर मचावैं ॥
बरनै दीनदयाल इन्हैं तजि सुख सों जीजै ।
सठ संगति अतिभीति भूलि तहँ गमन न कीजै ॥६१॥

मानसचारी हंस करि गंग तरंग बिलास ।
सूकर-क्रीड़ा-सर विषे अब अभाग्यबस बास ॥
अब अभाग्यबस बास हास द्विज करैं चहूँ दिस ।
हा ! किमि धारैं धीर बीर या पीर कहूँ किस ॥
बरनै दीनदयाल अहो बिधि गति बलिहारी ।
कीच बीच फँसि रह्यो हंस यह मानसचारी ॥६२॥

नाहीं मानज हंस यह नहिं मुकुतन की रासि ।
यह तो संबुक मलिन खर करटन की मिरियासि ॥
करटन की मिरियासि रहैं याको सठ घेरे ।
तू मति भूले धीर जाहु याके नहिं नेरे ॥

बरनै दीनदयाल चलो निरजर-सर पाहीं ।
जहाँ जलज की खानि सदा सुख है दुख नाहीं ॥६३॥

हितकारी मानस बिना नहीं हंस चित चैन ।
छिन छिन व्याकुल बिरह बस सोचत है दिन रैन ॥
सोचत है दिन रैन बैन नीके नहिं आवत ।
काक बलाकन संग साक तजि समै बितावत ॥
बरनै दीनदयाल मरालहिं संकट भारी ।
मानस और न चहै बिना मानस हितकारी ॥६४॥

चक्रवाकी

चल चकई तिहि सर विषै जहँ नहि रैनि बिछोह ।
रहत एकरस दिवस ही सुहृद हंस-संदोह ॥
सुहृद हंस-संदोह कोह अरु द्रोह न जाके ।
भोगत सुख अंबोह मोह दुख होय न ताके ॥
बरनै दीनदयाल भाग्य बिन जाय न सकई ।
पिय मिलाप नित रहै ताहि सर चल तू चकई ॥६५॥

बक

चाली हंसन की चलै चरन चोंच करि लाल ।
लखि परिहै बक ! तव कला झख मारत ततकाल ॥
झख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत ।
विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज बिचारत ॥
बरनै दीनदयाल बैठि हंसन की आली ।
मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली ॥६६॥

मंडूक

दादुर ! काकोदर दसन परे मसन मति ध्याउ।
कहा लहैगो स्वाद को, एक स्वास की आउ॥
एक स्वास की आउ ग्रास यह तोहि करै है।
तोको नहिं विश्वास न मन कछु त्रास धरै है॥
बरनै दीनदयाल तोहि लखि बड़ो बहादुर।
अरिमुख रह्यो समाय अजौं नहिं संकित दादुर॥६७॥

कूप

पथिकन के अँसुवान को जल दरसाय अलीक।
किन किन की मति नहिं छली तू मरुकूप ! छलीक॥
तू मरुकूप छलीक सून हिय तामस बासा।
खाली धुनि सुनि परै नहीं जीवन की आसा॥
बरनै दीनदयाल कला न चलै गुनि जन की।
गुन भो वृथा बिसाल सुमति हारी पथिकन की॥६८॥

दोहा

यह अन्योक्ति-सुकल्पद्रुम साखा प्रथम बखानि।
बिरची दीनदयालगिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥६९॥

इति श्री-काशीनिवासी दीनदयालगिरि-विरचिते अन्योक्ति-कल्पद्रुमग्रंथे प्रथम शाखा समाप्ता॥

भूधर

बलिहारी भूधर तुमै धीर करैं गुन-गान ।
सानमान कहि अचल कहि सब जग करै बखान ॥
सब जग करै बखान सकल जीवन को पालौ ।
तीछन 'बात दवागि दाह तें नेक न हालौ ॥
बरनै दीनदयाल कौन तुम सो उपकारी ।
सुखद, रतन की खानि, बार बहु है बलिहारी ॥१॥

पारसमणि

चिंतामनि अरु नीलमनि पदमराग सु-प्रवीन ।
सुन्यो न पारस ! तुम बिना लोह कनक कोउ कीन ॥
लोह कनक कोउ कीन नहीं जग में जे मानिक ।
चमकैं ठौरहिं ठौर जगे हैं जे जेहि खानिक ॥
बरनै दीनदयाल अहो पारस तुम हो धनि ।
कियो कुधातु महीस-मुकुट क्या है चिंतामनि ॥ २ ॥

नीलमणि

मरकत ! पामर कर परी तजि निज गुन अभिमान ।
इतै न कोऊ जौहरी ह्याँ सब बसैं अजान ॥
ह्याँ सब बसैं अजान काँच तो को ठहरावैं ।
तदपि कुसल तू मान जदपि यहि मोल बिकावैं ॥
बरनै दीनदयाल प्रवीन ह्वै लखि दरकत ।
अहो करम गति गूढ़ परी कर पामर मरकत ॥ ३ ॥

मुक्ता

मेल्यो मुख घँसि सूँघ फिरि, फेक्यो कीस अजान।
मुक्ता ! बात कुसल भई जौ नहिं हन्यौ पखान ॥
जौ नहिं हन्यौ पखान बन्यो तौ रूप अजौ लौं।
मिले जौहरी तोल मोल बिकिहै कइ सौ लौं ॥
बरनै दीनदयाल खेल कपि कैसो खेल्यो।
बच्यो आपने भाग्य अहो मुक्ता मुख-मेल्यो ॥ ४ ॥

(रंग) राँग

लीने गुरुता को गरब अरे रंग ! मति भूलि।
रंग न तेरो है कछू सुबरन संग न तूलि ॥
सुबरन संग न तूलि तासु गुन को नहिं जाने।
धिग तव तौल प्रताप आप गुन आप बखाने ॥
बरनै दीनदयाल तिनै नृप क्रीटन कीने।
तू पामर तिय पाय रहै लपटाय मलीने ॥ ५ ॥

लोहा

लोहा ! द्रोह न कीजिए पारस मनि के साथ।
ताहि परसि पैहै प्रभा भूप-मनिन के माथ ॥
भूप-मनिन के माथ तोहि लखि जग हरखैगो।
करि करि कोटि प्रनाम सुमन तोपै बरखैगो ॥
बरनै दोनदयाल कौन सतसंग न सोहा।
पैहै रूप अनूप, बढ़ैगी कीमति लोहा ॥ ६ ॥

कानन

राखे जरत दवागि तें दै दै धार उदार।
मान गहन ! घनस्याम को वा दिन को उपकार ॥
वा दिन को उपकार साखि पै कोकिल कूजैं।
फूलीं लता अपार सुभृंगन के गन गूँजैं ॥
बरनै दीनदयाल धन्य तिनको जग भाखे।
जे मानैं उपकार तिन्हैं बुध मैं गनि राखे ॥

सामान्य वृक्ष

पाई तुम प्रभुता भली चहुँ दिसि अलि गुंजार।
हे तरु तटिनी तीर के करि लै कछु उपकार ॥
करि लै कछु उपकार आज ऋतुराज बिराजै।
डार सुमन के भार रही झुकिकै छबि छाजै ॥
बरनै दीनदयाल पथिन दै छाँह सोहाई।
पच्छिन को प्रतिपाल करै किन प्रभुता पाई ॥ ८ ॥

एहो द्रुम ! या सिसिर को दीजे दान तुरंत।
दीने सूखे पात के दैहै हरे बसंत ॥
दैहै हरे बसंत फूल फल दलन समेते।
पैहो पुंज सुगंध भृंग गूँजैंगे केते ॥
बरनै दीनदयाल लसोगे सोभा से हो।
भाखत वेद पुरान दिए बिन मिलै न एहो ॥ ९ ॥

उपकारी हौ द्रुम महा हम भाखत तुव पाहिं।
राखहु नाहिं दुजिह्व को हिय कोटर के माहिं ॥

हिय कोटर के माहिं देख दुख तो पच्छिन को।
पथी न आवैं पास त्रास उपजै लखि तिन को ॥
बरनै दीनदयाल सकल गुन है तुव भारी।
यह कुसंग ततकाल त्यागिए जग उपकारी ॥१०॥

मन को खेद न करिय तरु! पच्छिन को भरु पाय।
भाखत साखा रावरी सोभा रहे बनाय ॥
सोभा रहे बनाय सुफल-मै तुमको चाहैं।
सेवत प्रेम लगाय कहैं जस दिसि के माहैं ॥
बरनै दीनदयाल धीर रखिए निज तन को।
मंद बात को पाय कँपाइय नाहिं सुमन को ॥११॥

वा दिन की सुधि तोहि को भूलि गई कित साखि।
बागवान गहि घूर तें ल्यायो गोदी राखि ॥
ल्यायो गोदी राखि सींचि पाल्यो निज कर तें।
भूलि रह्यो अब फूलि पाय आदर मधुकर तें ॥
बरनै दीनदयाल बड़ाई है सब तिन की।
तू झूमै फल भार भूलि सुधि को वा दिन की ॥१२॥

विशेष वृक्षः। तत्र चंदन

चंदन! बंदन जोग तुम धन्य द्रुमन में राय।
देत कुकुज कंकोल लौं देवन सीस चढ़ाय ॥
देवन सीस चढ़ाय कौन तुव रीस करैगो।
बड़े बड़े तरु-ईस सुगंध न पीस मरैगो ॥

बरनै दीनदयाल पाय संताप निकंदन ।
नंदन बन तें आदि करैं तब बंदन चंदन ॥१३॥

तुलसी

सब तरु धरा धरे रहे बेख बड़े प्रिय कीस ।
एकै ही तुलसी लसी लघु सरूप हरि सीस ॥
लघु सरूप हरि सीस रीस को तासु करैंगे ।
बीस बिसे तरु-ईस खीस ह्वै भार जरैंगे ॥
बरनै दीनदयाल बड़ो छोटो जनि चित धरु ।
भाग्यवंत है बड़ो बड़ो नहिं कहिए सब तरु ॥१४॥

रसाल

एहो धीर रसाल ! अति सोहत हौ सिरमौर ।
साखा, बरनैं रावरी द्विजवर ठौरै ठौर ॥
द्विजवर ठौरै ठौर सुफल रावरि ही चाहैं ।
निकसै जो तव बात सुमन सो सुधी सराहैं ॥
बरनै दीनदयाल धन्य वा धात्री के हो ।
जातें प्रगटे आय आप उपकारी एहो ॥१५॥

जेतो फल तें नमत हौ एहो धीर रसाल !
तेतो ऊँचे होत हौ सोभा होति बिसाल ॥
सोभा होति बिसाल बात तव है सुखदायक ।
रस तें करो निहाल तुमै सेवैं द्विज-नायक ॥
बरनै दीनदयाल हिए हरि सों हित केतो ।
धरे स्याम छवि रहौ नमित रस देखौ जेतो ॥१६॥

पाई तुम मृदुता नई भई कठिनई दूरि।
गई स्यामता संग तजि छई लालिमा भूरि॥
छई लालिमा भूरि पूरि आई मधुराई।
सोभा बसी बिसाल नसी वह खोटि खटाई॥
बरनै दीनदयाल सुगंध कला छिति छाई।
जीवन-मुक्त रसाल भए सुचि संगति पाई॥१७॥

एहो सुमन समै सखे रखे रहो पिक डाल।
आप बिसाल रसाल हो एऊ बैन रसाल॥
एऊ बैन रसाल मधुर सुर-साज सजैंगे।
जाको देखि समाज सबै द्विजराज लजैंगे॥
बरनै दीनदयाल महा महिमा मढि लेहो।
पै यह काग अभाग दाग गुनि तजिए एहो॥१८॥

ऐसी संगति रावरे संग सजै न रसाल।
कागन के गन ये तुमै घेरि रहे इहि काल॥
घेरि रहे इहि काल कहा कुसुमाकर आए।
रसहु सुगंध समेत वृथा तुम देत बहाए॥
बरनै दीनदयाल हुई गति भई अनैसी।
कोकिल कीर मलिंद तीर नहिं संगति ऐसी॥१९॥

जानै नहिं तव माधुरी मंद मरंद सुगंध।
हे रसाल अज, कूट, कपि, कोल, क्रमेलक अंध॥
कोल क्रमेलक अंध फूल फल मूल विनासक।
साख विदारनिहार दुखद दुतिग्रासक त्रासक॥

बरनै दीनदयाल रसज्ञ सिलीमुख मानैं ।
महामीत महि माँह प्रीति महिमा तव जानैं ॥२०॥

सुनिए कल कोमल कलित हे सद सुखद रसाल ।
ये सुक पिक सारंग हैं सोभा-करन बिसाल ॥
सोभा-करन बिसाल डाल सेवैं तव हित सों ।
चोंच चरन के घाय पाय नहिं दुखिए चित सों ॥
बरनै दीनदायल चूक मन मैं जनि गुनिए ।
जानि मधुर सुखदानि बानि बर इनकी सुनिए ॥२१॥

कदली

रंभा ! झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत ।
तुम से केते ह्वै गए अरु ह्वैहैं इहि खेत ॥
अरु ह्वैहैं इहि खेत मूल-लघु साखाहीने ।
ताहू पै गज रहै दीठि तुमरे प्रति दीने ॥
बरनै दीनदयाल हमैं लखि होत अचंभा ।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा ॥२२॥

रंभा-वन ! तुम निज बिखे राखि गजन के ग्राम ।
चहत कुसल फल फूल को तिन खल तें बसु जाम ॥
तिन खल तें बसु जाम गुनत रखिबो दल अपनो ।
साखा राखै कौन मूल हू ह्वैहै सपनो ॥
बरनै दीनदयाल बात यह बड़ी अचंभा ।
वैरिन को सहबास राखि सुख चाहत रंभा ॥२३॥

पलास

दिन द्वै पाय बसंत मद फूल्यो कहा पलास।
ग्रीखम भीखम सीख पै नहिं लाली की आस॥
नहिं लाली की आस फूल सब तेरे झरिहैं।
पीछे तोहि न दली ! अली कोउ आदर करिहैं॥
बरनै दीनदयाल रहो नय कोमल किन द्वै।
ये नख नाहर-रूप रहैंगे तेरे दिन द्वै॥२४॥
लीने कंटक वन करै विरही-मन-झख त्रास।
याही तैं तेरो कविन राख्यो नाम पलास॥
राख्यो नाम पलास लाल मुख कोपित धारो।
लह्यो न एक कलंक विना कछु तातें कारो॥
बरनै दीनदयाल संग सुक हू को कीने।
माधव सों मिलि मूढ़ तऊ छल कंटक लीने॥२५॥

सांल्मली

किन किनकी मति नहिं छली सालमली करि अंध।
गीधे गीध अमिख डली जानत अली सुगंध॥
जातन अली सुगंध भली लाली सुक भूले।
जानि अँगार चकोर ओर चहुँ तें अनुकूले॥
बरनै दीनदयाल लखै गति को छिन छिन की।
यह छलरूप लखाय छली नहिं मति किन किनकी॥२६॥
सेमल ! बिना सुगंध तू करत मालती रीस।
छलि रे भ्रम दै सुकन को, नहिं जैहै हरि सीस॥

नहिं जैहै हरि सीस भूलि जिन लखि निज.लाली ।
जैहै बेगि बिलाय ल्याय मति मद को खाली ॥
बरनै दीनदयाल जगत में बिन गुन जे खल ।
करैं वृथा अभिमान जथा तरु मैं तू सेमल ॥२७॥

आक

तो मैं बहु ऐगुन भरे अरे आक मतिहीन ।
कहा जान केहि हेत तें हर तोसों हित कीन ॥
हर तोसों हित कीन तऊ उन केरि बड़ाई ।
तू मति मोहै मूढ़ मानि अपनी प्रभुताई ॥
बरनै दीनदयाल बात सुनि भाखत जो मैं ।
सिव की छाया एक आक बहु ऐगुन तो मैं ॥२८॥

नाहीं कछु फल फूल तो बज्यो नाम मंदार ।
ताप गयो किन पथिन को सेवत तुमरी डार ॥
सेवत तुमरी डारँ कौन विश्राम लह्यो है ।
नहिं पराग मकरंद मलिंदन भूलि रह्यो है ॥
बरनै दीनदयाल खगौहु न आवत पाहीं ।
केवल छल-मै नाम बज्यो कहुँ बासहु नाहीं ॥२९॥

तजि ऋतुपति की माधवी आयो इहँ सारंग ।
आक आदरै ताहि किन दुर्लभ याको संग ॥
दुर्लभ याको संग राखि जस लै ग्रीखम भरि ।
ये तो पत्र प्रसून जाहिंगे पावस में झरि ॥

बरनै दीनदयाल कहै को दैवी गति की।
तो पै भ्रमै मलिंद माधवी तजि रितुपति की ॥३०॥

बंस

तो मैं बंस ! न सार कछु बकिवोहू अभिमान।
ता तें मलै न तोहि को बिरचै आपु समान॥
बिरचै आपु समान न तो हिय सून निहारत।
तेरे पास हुतास तासु तें तिनहूँ जारत॥
बरनै दीनदयाल होख तिनको न कहीं मैं।
गंधसार का करै खार है वंस न तो मैं ॥३१॥

दाड़िम

दारों तुम या बाग मैं कहा हँसो मुख खोलि।
दिना चार की औध मैं लीजै नैक कलोलि॥
लीजै नैक कलोलि दसन की जो यह लाली।
जैहै कहूँ विलाय होयगी डाली खाली॥
बरनै दीनदयाल लगे खग हैं दिसि चारों।
भीतर काटत कीट कौन रँग राते दारों ॥३२॥

बबूर

दुख दै जिन इन पथिन को एरे कूर बबूर।
जगकंटक कंटकन ते करि राख्यो मग घूर॥
करि राख्यो मग घूर दूर के थकित बिचारे।
छाय पाय पछिताय लगे फल फूल नकारे॥

बरनै दीनदयाल दया करके कछु सुख दै ।
हिय कठोर अति घोर अंत बनि कोल्हू दुख दै ॥३३॥

करीर

धार्‍यो दलन करीर ! तुम बहु रितुराजन पाथ ।
यहै त्याग दृढ़ देखि कै प्रिय कीनो जदुराय ॥
प्रिय कीनो जदुराय रमे तव कुंजनि माहीं ।
और सबै तरुराज ताहि दिसि देखत नाहीं ॥
बरनै दीनदयाल ऊँच नहिं नीच बिचार्‍यो ।
जो जग धर्‍यो बिराग ताहि हरि हित सों धार्‍यो ॥३४॥

असोक

सेवत तुमैं असोक ! यह माली गयो बुढ़ाय ।
अधिकै कियो ससोक तुम फोकट नाम सुनाय ॥
फोकट नाम सुनाय नहीं कछु काम सरै है ।
लगे बामपद अहो फूल अभिराम धरै है ॥
बरनै दीनदयाल सरल को कछ न देवत ।
योंही आसा लागि तुमैं निरफल को सेवत ॥३५॥

चंपक

धारे खेद न रहिय चित हे चंपक कमनीय ।
कहा भयो अलि मलिन हिय जौ नहिं आदर कीय॥
जौ नहिं आदर कीय मानि तेहिं मंद अभागी ।
कुटज करीर कुसाखि कुसुम को भो अनुरागी ॥

बरनै दीनदयाल नील नीरद सम कारे।
कुसल रहैं वे केस कुसेसै-नैनि सुधारे ॥ ३६ ॥

निंब

एकै ऐगुन देखि कै नींब न तजो सुजान।
याकी कटुता नहिं गुनो करि बहुगुन पहिचान ॥
करि बहुगुन पहिचान प्रथम सब रोग विनासै।
जो कोउ सेवै याहि ताहि पीछे सुख भासै ॥
बरनै दीनदयाल छाँह मुद देति अनेकै।
यह सीतलता खानि तजो कटु देखि न एकै ॥ ३७ ॥

कपास

जग मैं गुनमय करि तुमैं बरनैं सकल महान।
कहा भयो जो नहिं कियो चपल एक अलि मान ॥
चपल एक अलि मान कियो नहिं कछू नसायो।
हे कपास सहि खेद धन्य परछेद दुरायो ॥
बरनै दीनदयाल स्याम याको गनि ठग मैं।
मधुप मंद किमि जान तुमैं बुध जानैं जग मैं ॥ ३८ ॥

तुंबिका

एरी धूरी तूमरी अहो धन्य तव भाग।
मज्जति सुरसरि नीर मैं साधुप्रसाद प्रयाग ॥
साधुप्रसाद प्रयाग टूटि जब तें तू आई।
तब तें भई सुरंग मलीन कुसंग विहाई ॥

बरनै दीनदयाल छुटी कटुता सब तेरी।
सुधरी संगति पाय घूर की तूमरि एरी ॥ ३९ ॥

गेंदा

माली की सहि सासना सुनि गेंदे मति भूल।
बिन सिर दै पैहै नहीं वहै हजारे फूल ॥
वहै हजारे फूल जौन सुरसीस चढ़ैगो।
दए आपनो आप अधिक तें अधिक बढ़ैगो ॥
बरनै दीनदयाल किती तू पैहै लाली।
तेरे ही हित हेत देत सिख तोकों माली ॥४०॥

गुलाब

सुनिए मीत गुलाब! अलि क्यों मन रहिहै रोकि।
रहत न धीरज रसिक चित कुसुमित कली बिलोकि ॥
कुसुमित कली बिलोकि चहूँ दिसि भरत भाँवरी।
ताहि न कंटक वेधि करौ मति बिकल बावरी ॥
बरनै दीनदयाल पालि हित अपनो गुनिए।
रस पराग जुत राग सुगंधहि दै जस सुनिए ॥४१॥

नाहीं भूलि गुलाब! तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार ॥
बहुरि कटीली डार होहिंगी ग्रीखम आए।
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताए ॥
बरनै दीनदयाल फूल जौलौं तौ पाहीं।
रहे घेरि चहुँ फेरि, फेरि अलि ऐहै नाहीं ॥४२॥

सामान्य कुसुम

मोहै मति सुमना ! मना करौं बारही बार।
महाछली है मधुप यह कहा करै इतबार॥
कहा करै इतबार बाहिरै भीतर कारो।
गनिकादिक में रमै चपल भरमै दिसि चारो॥
बरनै दीनदयाल लालची यह रस को है।
सुनि याकी धुनि मंद माधुरी तैं मति मोहै॥४३॥

प्यारे करै गुमान जनि सुनि प्रसून ! सिख मोरि।
तो समान इहि बाग में फूलि झरे हैं कोरि॥
फूलि झरे हैं कोरि बहोरि कितै बिनसैहैं।
या बहारि दिन चारि गए फिरि ग्रीखम ऐहैं॥
बरनै दीनदयाल न करि सारंगहि न्यारे।
तो रस जान निहार बड़े हितकारक प्यारे॥४४॥

सोहै नहिं सज सुमन ! तो अज ढिग नखरो नाज।
कौन आदरै, बलि, बिना अलि सुरसिक सिरताज॥
अलि सुरसिक सिरताज भाँवरी भरै भाव सों।
रस पराग अनुराग तासु चित लाग चाव सों॥
बरनै दीनदयाल खोलि दृग तेहि किन जोहै।
तो गुन को रिझवार एक यह साँरग सोहै॥४५॥

सामान्य विहंग

सूको तरु सेवत कहा विहँग देवद्रुम सेव।
सजैं सुकादिक धीर जहँ सुन्यो न ताको भेव॥

सुन्यो न ताको भेव फूल फल सौरभ जामैं ।
सदा रहै रस लखो बसो कुसुमाकर तामैं ॥
बरनै दीनदयाल लाल तू तो अति चूको ।
सुखद कलपतरु त्यागि दुखद सेवै द्रुम सूको ॥४६॥

नहीं तरंगी तीर में हे खग वास बनाय ।
यह सुतंत्र, को कहि सकै, दैहै कहूँ बहाय ॥
दैहै कहूँ बहाय हाय करिकै सिर धुनिहै ।
कोऊ नहीं सहाय पाय दुख पीछे गुनिहै ॥
बरनै दीनदयाल बड़ो यह है बहुरंगी ।
अहै चपल, उड़ि चलो, भलो यह नहीं तरंगी ॥४७॥

विशेष विहंग । तत्र शुक

सुनिए हे सुक यह नहीं सुखद रसाल रसाल ।
है सेमल छलरूप मति भ्रमो सुमन लखि लाल ॥
भ्रमो सुमन लखि लाल भँवर रस गंध न पायो ।
जानि अँगार चकोर प्यार करि डार लुभायो ॥
बरनै दीनदयाल कला याकी बहु गुनिए ।
पीछे तूल बढ़ाय सूल हूलत है सुनिए ॥४८॥

नहिं दाड़िम, सैलूख यह सुक ! न भूलि भ्रम लागि ।
दल तें सूलिन को छल्यो चोंच बचै तौ भागि ॥
चोंच बचै तौ भागि, जाहु ना तो पछतैहो ।
याके फल के बीच बड़ो श्रम कछू न पैहो ॥

वरनै दीनदयाल लाल लखि लोभ्यो है किम ।
यह तो महाकठोर, भूलि, सुक है नहिं दाड़िम ॥४९॥

तजि कै दाड़िम मूढ़ सुक खान गयो कित बेल ।
काँटनि सों बेधित भयो भूलि गयो सब खेल ॥
भूलि गयो सब खेल पंख लासा लपटायो ।
गिरयो राख मैं जाय जगत में काग कहायो ॥
वरनै दीनदयाल कहा बहु रोवै लजिकै ।
करु मति को धिक्कार कठिन सेयो मृदु तजिकै ॥५०॥

हे सुक प्रीति न कीजिए इन कागन के संग ।
कहुँ भुलाय लै जाय कै करिहैं चोंचहिं भंग ॥
करिहैं चोंचहिं भंग नारियल फल के माहीं ।
निरफल जैहैं सकल कला पैहै कछु नाहीं ॥
वरनै दीनदयाल जानि इनको दुख-हेतुक ।
न तु पछतैहै अंत खोय अपनो गुन हे सुक ॥५१॥

पछितान्यो इक बेर तू यह सेमर फल बीच ।
फिरि सुक सेवन ताहि को लगो कहा रे नीच ॥
लगो कहा रे नीच वहै तरु जानत नाहीं ।
लखि लखि लाल प्रसून सून मोहत ता माहीं ॥
वरनै दीनदयाल अजौं लगि नहिं पहिचान्यो ।
बेर बेर लै तूल सूल सहि तू पछितान्यो ॥५२॥

तोरै चोंच न कीर ! तू यह पंजर है लोह ।
खुलिहै खुले कपाट के तजि कुल्हिया को मोह ॥

तजि कुल्हिया को मोह यही बंधन है तोको।
यासों प्रेम लगाय छुटन पाए कहु को को॥
बरनै दीनदयाल छुटै जौं नेह न जोरै।
तो बसिहै आनंद बाग छठि चोंच न तोरै॥५३॥

कोकिल

कोकिल लोचन ललित करि करिय न कोप विखाद।
भयो कि? मूढ़ द्रवो न जो सुनि कै पंचम नाद॥
सुनि कै पंचम नाद द्रवैं सुर-चतुर विवेकी।
ते न द्रवैं जिहि लगै सुखद बानी कौवे की॥
बरनै दीनदयाल लगै प्रिय साँपिनि को विल।
कहा करैं ते रंगभौन सुनिए हे कोकिल॥ ५४॥

हे पिक पंचम नाद को नहिं भीलन को ज्ञान।
यहै रीझिबो मानि तू जो न हनै हिय वान॥
जो न हनै हिय बान बड़ी करुना इनकेरी।
मारैं ये मृग-जूथ कहा गिनती है तेरी॥
बरनै दीनदयाल थको रटिकै तुम केतिक।
ये नहिं रीझनिहार जाहु बन को तजि हे पिक॥५५॥

कोकिल दिल दै कीर सों करिए प्रेम सुहात।
दुहुँ रसाल बन सघन के बिहरन-सील कहात॥
बिहरन-सील कहात कंठ कल कोमल दोऊ।
सुजस जगत के माहिं नाहिं तुव पटतर कोऊ॥

बरनै दीनदयाल रहो इनहीं तें हिल मिल।
प्रीति समान बखान करैं कविजन हे कोकिल ॥५६॥

सोरैं कीस करैं महा, किलकारैं इत कोल।
काक वलाक जुरे रटैं कोकिल ह्याँ मति बोल॥
कोकिल ह्याँ मति बोल नहीं इत बात तिहारी।
कहा व्यजन की बाय जहाँ बहु बही बयारी॥
बरनै दीनदयाल कितै सुर पंचम जोरैं।
सुनै कौन या ठौर जितै ये खल के सोरैं॥ ५७॥

चातक

लागे सर सरवर परयो करयो चोंच घन ओर।
धनि धनि चातक प्रेम तव पन पाल्यो बरजोर॥
पन पाल्यो बरजोर प्रान परयंत निबाह्यो।
कूप नदी नद ताल सिंधुजल एक न चाह्यो॥
बरनै दीनदयाल स्वाति बिन सबही त्यागे।
रही जन्म भरि बूँद आस अजहूँ सर लागे॥ ५८॥

बरषा भरि बरषत धरा धाराधर धरि धीर।
कहा दोख चातक! तिनै तो मुख परयो न नीर॥
तो मुख परयो न नीर नदी नद सबही भरिगे।
पालि किए बहु सालि-बालि जग मैं जस करिगे॥
बरनै दीनदयाल करो मति तुम आमरषा।
बुझै नहीं तुव प्यास करै जो केतो बरषा॥ ५६॥

काहे चातक बूँद हित सहत उपल पवि-पात ।
कहा सरित सर सूखिगे जे भूखित जलजात ॥
जे भूखित जलजात हंस अवली धवली तें ।
सीतल मधुर पुनीत जासु जल भाँति भली तें ॥
बरनै दीनदयाल तिनै तजि सीकर चाहे ।
सोचत लाभ न हानि सहै द्विज दुख को काहे ॥ ६० ॥

मयूर

बानी मधुरी, बास बन, परभा परम बिसाल ।
बरही ! ऐगुन एक अति भखत कुव्याल कराल ॥
भखत कुव्याल कराल चाल या नहीं भली मैं ।
ये सब गुन के जाल जाहिंगे अजस गली मैं ॥
बरनै दीनदयाल हाल गति यह तो जानी ।
कित वह असन भुजंग कितै यह मृदु वर बानी ॥ ६१ ॥

धुरवा नहिं, दव-धूम है, नहिं गरजनि, तरु-सोर ।
भ्रमवस कूक करै कहा मरै नाच नचि मोर ॥
मरै नाच नचि मोर न ए दामिनि की दमकैं ।
एतो घोर हुतास जोर चहुँ ओर सु चमकैं ॥
बरनै दीनदयाल भूलि मति तू मन मुरवा ।
तज यह सिखर कराल, जरैगो, नहिं ये धुरवा ॥ ६२ ॥

चकोर

सोच न करै चकोर चित कुहू कु-निसा निहारि ।
सनै सनै ह्वैहै उदै राका ससि तम टारि ॥

राका ससि तम टारि दूरि दुख करिहै तेरो।
धीर धरै किन बीर कहा अकुलाय घनेरो॥
बरनै दीनदयाल लखैगो तू भरि लोचन।
जो तेरो प्रिय प्रान मिलैगो सो अब सोच न॥ ६६॥

सोवै कितै चकोर! तू सफल करै किन नैन।
चार दिना यह चाँदनी फिरि अँधियारी रैन॥
फिरि अँधियारी रैन सखे! लखि सोच मरैगो।
सजग रहै नहिं भूलि काल-कृत जाल परैगो॥
बरनै दीनदयाल लाल! यह काल न खोवै।
रोम रोम प्रति सोम-कला फैली, कित सोवै॥ ६४॥

पतंग

वै तो मानत तोहि नहिं तैं कित भरयो उमंग।
नहिं दीपहिं कछु दरद, क्यों जरि जरि मरै पतंग॥
जरि जरि मरै पतंग तासु ढिग कदर न तेरी।
तू अपनो हित जानि भाँवरै भरत घनेरी॥
बरनै दीनदयाल प्रान-प्रिय मान्यो तैं तो।
मुख मलीन करि रहैं चहैं नहिं तोको वै तो॥६५॥

उलूक

हे रे अंध उलूक तू दुरौ दरी में नीच।
तेरे जान नहीं उदै भए भानु नभ बीच॥
भए भानु नभ बीच सकल जग तासु अधीने।
तू एकै खल कूर कहा तो निंदा कीने॥

बरनै दीनदयाल दोख जनि दै उन केरे।
अपनो भाग विचार उतै बुध बंदत हेरे ॥६६॥

वायस (कौवा)

वायस ! तू पिक मध्य ह्वै कहा करै अभिमान।
ह्वैहै बंस सुभाव की बोलत ही पहिचान॥
बोलत ही पहिचान कानकटु तेरी बानी।
वे पंचम धुनि मंजु करैं जिहि कविन बखानी॥
बरनै दीनदयाल कोऊ जौ परसै पायस।
तऊ न तजै मलीन मलहि खाए बिन वायस ॥६७॥

हे रे काग कठोर रट कीरहि दूखत काह।
सुनि कै इनकी मधुर धुनि मोहत हैं नरनाह॥
मोहत हैं नरनाह हेम-पिंजर मैं राखैं।
इनहीं के मुख लखैं बैन इनके अभिलाखैं॥
बरनै दीनदयाल लगै विष लौं तव टेरे।
कोपैं सब इहि लागि भागि ह्याँतें खल हेरे ॥६८॥

बासा

बासा ! यह तरु पै तुम्हैं बासा बासर एक।
वक नहिं इत व्याघा जुरे बहरी और अनेक॥
बहरी और अनेक का कहौं बाज रहै ना।
जाल परेवा होय जौन दुख सो कहु मैना॥
बरनै दीनदयाल करै तू केकी आसा।
लाल ! मानि अब टेर भजो सर आवत बासा ॥६९॥

सिंह

टूटे नख रद केहरी वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतंत्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटे॥७०॥

मातंग

भाजत हे जिहि त्रास ते दिग्गज दीरघदंत।
नाहर नहिं नेरे फिरैं देखि बड़ो बलवंत॥
देखि बड़ो बलवंत गिरैं गिरि-कंदर दर तें।
नदी कूल कुज मूल परसि विनसैं रद कर तें॥
बरनै दीनदयाल रह्यो जो सब पै गाजत।
अहो सोई गजराज आज कलभन तें भाजत॥७१॥

तोरै मति तरु मूल तें फूल सहित हित नूर।
अरे निरंकुश दुरद बद दुखद महामद पूर॥
दुखद महामद पूर लखै नहिं याकी सोभा।
फल दल भल सुखदानि सकल जग जातें लोभा॥
बरनै दीनदयाल प्रेम जो सब तें जोरै।
सो उपकारी मानि मीत ता प्रीति ना तोरै॥ ७२॥

बारन! बारन मति करै ये सारँग सुखदानि।
हे मदमाते अंधमति ह्वैहै तुव छबि हानि॥

ह्वैहै तुव छबिहानि नहीं छति कछु अलिगन की ।
करिहैं प्रभा प्रकास बिकच बरबारिज वन की ॥
बरनै दीनदयाल जाय जान्यो नहिं कारन ।
बिभौ बिनासि त्रिलोक बिपिन में बिहरै बारन ॥७३॥

आयो हुतो सरोज तजि बड़ी दूर तें भौंर ।
दान देन पीछे रह्यो मारि गिरायो ठौर ॥
मारि गिरायो ठौर गौर गज ! कछू न कीनो ।
तुम तो कृतघन बने प्रभा तजि अपजस लीनो ॥
बरनै दीनदयाल बूझि बेदन यों गायो ॥
सुख यह जग के माहँ समद तें किनको आयो ॥७४॥

भूपन तें आदर लयो दल को भयो सिँगार ।
अजहूँ तजी न बानि गज सिर पर डारत छार ॥
सिर पर डारत छार झूल डारे मखमल की ।
चल्यो हठीलो चाल भयो जग सीमा बल की ॥
बरनै दीनदयाल होत नहिं कछु रूपन तें ।
छुटै न बंस सुभाय पाय आदर भूपन तें ॥७५॥

तुरंग

घोरे नीकी चाल चल जातें होय बखान ।
छाड़ि ऐब दै आड़ को पछलत्तहुँ जनि ठान ॥
पछलत्तहुँ जनि ठान सान सों कदम दीजिए ।
बहकि चलै मति राह सीख सिर मानि लीजिए ॥

बरनै दीनदयाल समर तें भागि न भोरे।
मालिक के सँग घाय खाय बनिहै हे घोरे ॥७६॥

कुरंग

धावै कहा कुरंग ए नहिं है तोय तरंग।
एतो घोर निदाघ की रवि-किरनैं बहुरंग॥
रवि-किरनैं बहुरंग देश मारू यह जानो।
इतै न छाया कहीं नहीं विश्राम ठिकानो॥
बरनै दीनदयाल मुधा जल प्यास न जावै।
हे कुरंग तजि गंग कहा मारू जल धावै॥७७॥

कस्तूरी-मृग

तेरे ही बिच वस्तु वह जाको जगत सुगंध।
खोजत कहा कुरंग तू! अंबक आछत अंध॥
अंबक आछत अंध कहा दिसि दिसि भरमै है।
अपनी दिसि अवलोक तबै वाको सुख पैहै॥
बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर हेरे।
अंतरमुख ह्वै ढूँढ़ सुगंध सबै घट तेरे॥७८॥

जंबुक

कैसो आयो काल यह गरजन लगे शृगाल।
गाल बजाय कुटिल कहैं कहा केहरी माल॥
कहा केहरी माल ससन के बीच बकैं हैं।
पीछे निंदैं नीच मीच को नाहिं तकैं हैं॥

बरनै दीनदयाल कठिन दिन आयो ऐसो।
ये बद हद मद करैं जंबुकन के गन कैसो ॥७९॥

सूकर

सुनि रे सूकर नीचतर कहा करै अभिमान।
जीत्यो मैं यों बकत क्यों अति मृगपति बलवान॥
अति मृगपति बलवान जगत जानै तिहि बल को।
तू मलीन मतिहीन सदा सेवै मल थल को॥
बरनै दीनदयाल आपने बल को गुनि रे।
कहाँ प्रबल मृगराज कहाँ लघु सूकर सुनि रे॥८०॥

शशक

बाँके सर नाँके धरे करे भयानक भेख।
कितै छिप्यो तृन ओट मैं, ससे! खोलि दृग देख॥
ससे खोलि दृग देख भाग आनँद घन वन में।
नातो तोको सही हन्यो चाहत कोउ छन में॥
बरनै दीनदयाल कहा ह्वैहै दृग ढाँके।
डर छुटिहै नहिं व्याध लिए सर आवत बाँके॥८१॥

दोहा

यह अन्योक्ति-सुकल्पद्रुम साखा दुतिय बखानि।
बिरची दीनदयाल गिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥८२॥

इति श्री-काशीनिवासी दीनदयालगिरि-विरचिते अन्योक्ति-कल्पद्रुम ग्रंथे द्वितीया शाखा समाप्ता॥

मनुष्य जाति विशेष—ब्राह्मण

हे पांडे यह बात को को समुझै या ठाँव।
इतै न कोऊ है सुधी यह ग्वारन को गाँव॥
यह ग्वारन को गाँव नाँव नहिं सूधे बालैं।
वसैं पसुन के संग अंग ऐंड़े करि डोलैं॥
बरनै दीनदयाल छाँछ भरि लीजै भांडे।
कहा कहो इतिहास सुनै को इत हे पांडे॥१॥

क्षत्रिय

पैहै। कीरति जगत में पीछे धरौ न पाँव।
छत्रीकुल के तिलक हे महासमर या ठाँव।
महासमर या ठाँव चलैं सर, कुंत, कृपानैं॥
रहे वीरगण गाजि पीर उर में नहिं आनैं।
वरनै दीनदयाल हरखि जौ तेग चलैहौ।
हैहौ जीते जसी मरे सुरलोकहिं पैहौ॥२॥

वैश्य

बारे को तू बनिक है सौदा लै इहि हाट।
चौमुख बनो बजार है बहु दुकान को ठाट॥
बहु दुकान को ठाट कोऊ साँची कोउ झूठी।
आछी भाँति विचारि वस्तु लै बड़ी अनूठी॥
बरनै दीनदयाल खोउ धन वृथा न प्यारे।
घर आवैगो काम इतै सब लूटनवारे॥३॥

भारी भार भरयो बनिक तरिबो सिंधु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी खेवनिहार गँवार॥
खेवनिहार गँवार ताहि पर पौन झकोरै।
रुकी भवँर में आय उपाय चले न करोरै॥
बरनै दीनदयाल सुमिरि अब तू गिरधारी।
आरत जन के काज कला जिन निज संभारी॥४॥

माली

माली तेरे बाग में चंदन लगो बिसाल।
ताप करै किन दूरि तू खोजत कितै बिहाल॥
खोजत कितै बिहाल तिहूँ गुन यामैं देखो।
कटु अरु सीत सुगंध भली बिधि करो परेखो॥
बरनै दीनदयाल भूलि भरमै कित खाली!
जाको बरनै बेद सोई यह चंदन माली॥ ५॥

आली चंदन की न क्यों पाली माली कूर।
मतवाली मति तो भई सींचत बेरि, बबूर॥
सींचत बेरि, बबूर दुखद कंटक हैं ताके।
सेवत क्यों नहिं अंध गंध मुदकर बर जाके॥
बरनै दीनदयाल सबै श्रम जैहै खाली।
पालत है किन ताप-समन चंदन की आली॥ ६॥

माली नींब रसाल सँग लाय करी अनरीति।
काग आम, पिक नींब पै बैठारे बिपरीति॥

बैठारे विपरीत रीति तूँ कछू न बूझै।
स्याम स्याम सब एक नहीं ऐगुन गुन सूझै॥
बरनै दीनदयाल कौन यह तेरी चाली।
कोकिल तें करि ऊँच काग को मानत माली॥ ७॥

कुलाल

कैसो मद में है भरो याकी करो पिछान।
यहि कुलाल को देखिए अहो प्रपंच-निधान॥
अहो प्रपंच-निधान रंच काहू नहिं मानै।
आपै बनै बिरंचि समो बहु रचना ठानै॥
बरनै दीनदयाल समै अब आयो ऐसो।
विधि की समता करै कुलाल कूर यह कैसो॥ ८॥

दरजी

दरजी सीवत तोहि गे दिन बहु बरनै कौन।
कोन बीच बसि क्या करै अंधकार इहि भौन॥
अंधकार इहि भौन आयकै छाय रह्यो है।
टूटि गई है सुई सूत अरुझाय रह्यो है॥
बरनै दीनदयाल लोग सब अपने गरजी।
जामा जोरन भयो कहा अब सीवै दरजी॥ ९॥

रजक

एरे मेरे धोबिया तासों भाखत टेरि।
ऐसी धोनी धोइ जो मैलो होय न फेरि॥

मैलो होइ न फेरि चीर इहि तीर न आवै।
साबुन लाउ बिचार मैल जावें छुटि जावै॥
बरनै दीनदयाल रंग चढ़िहै चहुँ फेरे।
जो तू दैहै धोय भले जल उज्जल घरे॥ १० ॥

नट

धारत नट बहु स्वाँग है। कला अनेक प्रवीन।
कबहूँ करी न वह कला जहाँ कला सब लोन॥
जहाँ कला सब लोन कला सफला है सोई।
और कला जग चला जथा चपला घन होई॥
बरनै दीनदयाल भागि जनि आगि निहारत।
धरे सती को स्वाँग कहा पग पीछे धारत॥ ११ ॥
राजा ह्याँ है आँधरो मूक बधिर अज्ञान।
सभा सबै तैसी भरी ताने कहा बितान॥
ताने कहा बितान अरे नट बुद्धि-बिहीने।
लखै सराहै कौन सुनैगो, दृग-श्रुति-हीने॥
बरनै दीनदयाल सुनाट्य-कला सुर बाजा।
ह्वैहैं बन के फूल, भूल मति तू गुनि राजा॥ १२ ॥

दारुनटी (कठपुतली)

तेरी है कछु गति नहीं दारु चीर को मेल।
करै कपट पट ओट मैं वह नट सबही खेल॥
वह नट सबही खेल खेलि फिरि दूर रहै है।
द्वै बिन बनै प्रपंच कहो को कूर कहै है॥

बरनै दीनदयाल कला वापै बहुतेरी।
जो जो चाहै नाँच कढ़ै सो सो गति तेरी॥ १३॥

नटी

नीकी विधि चलि री नटी अति सूछम इह राह।
राम राम मुख, ध्यान पद ह्वैहै तबै निबाह॥
ह्वैहै तबै निबाह सबै गो-गोचर अपने।
बस करिकै चलि सूध नहीं चित चालै सपने॥
बरनै दीनदयाल डिगे फिरि खोज न जी की।
ये सब देखनिहार न दैहैं उपमा नीकी॥ १४॥

ग्वालिनी

बारि बिलोवै, डारि दधि अरी आँधरी ग्वारि।
ह्वैहै श्रम तेरो वृथा नहिं पैहै घृत हारि॥
नहिं पैहै घृत हारि हँसैंगी सखी सयानी।
तू अपने मन मान रही घर की ठकुरानी॥
बरनै दीनदयाल कहा दिन योंही खोवै।
पछतैहै री अंत कंत ढिग बारि बिलोवै॥ १५॥

किरातिनी

गुंजन को वन देखिकै मुकुतन दीनो त्यागि।
अरी अबूझ किरातिनी धिक धिक तेरी लागि॥
धिक धिक तेरी लागि न ऐगुन गुन पहिचानै।
ऊपर ही के रंग ठगी मति मूढ़ न जानै॥

बरनै दीनदयाल परीं यह ते। सब कुंजन।
कौड़ी याको मोल लाल लखि भूलि न गुंजन ॥ १६ ॥

पनिहारिन

पनिहारी इहि सर परे लरति रही सब पाँह।
रीतो घट लै घर चली उतै मारिहै नाह ॥
उतै मारिहै नाह काह तिहि उत्तर देहै।
रोय रोय पति खोय फेरि सर पै फिरि ऐहै ॥
बरनै दीनदयाल इतै हँसिहैं सब नारी।
ख्वारी दुहुँ दिसि परी अरी ख्वारी पनिहारी ॥ १७ ॥

तमोलिनी

बैारी दौरी में धरे बिन सींचे मति भूल।
फेरै क्यों न तमोलिनी! सूखे सड़े तमूल ॥
सूखे सड़े तमूल बहुरि पाछे पछितैहै।
ऐहै गाहक लैन कहा तब ताको देहै ॥
बरनै दीनदयाल चूक जनि तू इहि ठौरी।
आछी भाँति सुधारि बस्तु अपनी रखि बैारी ॥ १८ ॥

किसान

आछी भाँति सुधारिकै खेत किसान बिजोय।
न तु पाछे पछितायगो समै गयो जब खोय ॥
समै गयो जब खोय नहीं फिर खेती ह्वैहै।
लैहै हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै ॥

बरनै दीनदयाल चाल तजि तू अब पाछी ।
सोउ न, शालि सम्हालि विहंगन ते बिधि आछी ॥ १६ ॥

गढ़धनी

साथी पाथी भे सभै गढ़ी ढहै चहुँ फेरि ।
आनि बनी अरि की अनी धनी खोलि दृग हेरि ॥
धनी खोलि दृग हेरि धवल धुज आय बिराजे ।
बोलन लगे नकीब डंक अब तो तिहुँ बाजे ॥
बरनै दीनदयाल साजि अब अपनो हाथी ।
हरि को टेर सहाय, गए सब तेरे साथी ॥ २० ॥

चौपर-खेलारी

अहे खेलारी चूक मति पंजा बिखै सम्हाल ।
परो दाव तेरो खरो करि लै सारी लाल ॥
करि लै सारी लाल लाल निज चाल न छूटै ।
सनमुख ही मुख राखि देखु जुग कहूँ न फूटै ॥
बरनै दीनदयाल जीति बाजी इहि बारी ।
हारो मूढ़न संग बार बहु अहे खेलारी ॥ २१ ॥

चंग-उड़ायक

काँचे गुन छाँड़ै नहीं अरे उड़ायक कूर ।
जैहै कर तें टूटि कै उड़ो गुड़ी कहुँ दूर ॥
उड़ी गुड़ी कहुँ दूर लूटि लरिका सब लैहैं ।
तोको जानि गँवार हँसी करतारी दैहैं ॥

बरनै दीनदयाल भाँजु गुन को बिन जाँचे ।
ह्वैहै गुनी प्रवीन छाँड़ि जनि तू गुन काँचे ॥ २२ ॥

जौहरी

मैली थैली लखि न तू भ्रमै प्रेम करि खोल ।
अहे जौहरी ! है खरी यामें मनि अनमोल ॥
यामें मनि अनमोल तोल करि ताको लीजै ।
कीजै कछू न खोटि कोटि धन तापै दीजै ॥
बरनै दीनदयाल जथा मजनू मन लैली ।
तैसे ही अनुरागि, त्यागि मति मैली थैली ॥ २३ ॥

नीकी मुकुतन की लरी पै ह्याँ गाहक नाहिं ।
इत सबरी सबरी भरीं सगरी नगरी माहिं ॥
सगरी नगरी माहिं फिरनहारी कुंजन की ।
कबरी भारनि रचैं आनि अबरी गुंजन की ॥
बरनै दीनदयाल बूझ कैसी तब ही की ।
अहे जौहरी ! जौन कौन पै बरनै नीकी ॥ २४ ॥

सौदागर

सौदागर तू समुझिकै सौदा करि इहि हाट ।
जैहै उठि दिन होय मैं पछितैहै फिरि बाट ॥
पछितैहै फिरि बाट वस्तु कछु भली न लोनी ।
योंही लंपट होय खोय सब संपति दीनी ॥
बरनै दीनदयाल कौन बिधि ह्वैहै आदर ।
गए आपने देस बिना सौदा सौदागर ॥ २५ ॥

चित्रकार

क्या है भूलत लखि इन्हें अहे चितेरे चेत।
ए तो अपने ऐन में रचे आपने हेत॥
रचे आपने हेत चराचर चित्रहिं तूने।
डरै भ्रमै मति मीत तोहि बिन ये सब सूने॥
बरनै दीनदयाल चरित अति अचरज या है।
रँगे आपने रंग तिनै लखि भूलत क्या है? ॥ २६ ॥

पाहरू

सुनिए एहो पाहरू कहौं तिहारे हेत।
औरन को टेरत फिरो निज घर को नहिं चेत॥
निज घर को नहिं चेत चोर चोरै धन जावैं।
घर की आग बुझाय सबै बाहिरै बुझावैं॥
बरनै दीनदयाल आपने ही चित गुनिए।
बित ह्वै जैहै, लोग हँसैंगे सिगरे सुनिए ॥ २७ ॥

छैल

ए जू छैल छबील मन तुमै कहौं समुझाय।
यह काजर की ओबरी निकरो अंग बचाय॥
निकरो अंग बचाय चातुरी तो जग जागै।
सिर पै चादर सेत बीच जो दाग न लागै॥
बरनै दीनदयाल बोध यह बुधन दए जू।
को न कुसंगति पाय कुलीन मलीन भए जू॥ २८ ॥

बजंत्री

अहे बजंत्री हरिन-भ्रम कहा बजावै बीन ।
या ठठेर-मंजारिका सुर सुनि मोहैगी न ॥
सुर सुनि मोहैगी न सुनै इन ठक-ठक बाजैं ।
कितै थकै करि कला अजौं नहिं आवति लाजैं ॥
बरनै दीनदयाल कहा याके ढिग तंत्री ।
ह्याँ ते होय निरास जाय घर अहे बजंत्री ॥ २९ ॥

मृदंग

सारंगी हित त्यागि कित रह्यो मृदंग दुराय ।
करिहै सिर पै थाप लै धिग धिग तू सिख पाय ॥
धिग धिग तू सिख पाय तबै कछु मधुर बोलिहै ।
सुघर बजंत्री जबहि पिंड गहि पटहि खोलिहै ॥
बरनै दीनदयाल ढूँढ़ि गुर सुर मिलि संगी ।
मिलो तहाँ चलि जहाँ बीन बाजत सारंगी ॥ ३० ॥

शंख

जनमे हो बर कुल विषे जग गुन गने असंख ।
बजे बिजै बहु बार पै रहे संख के संख ॥
रहे संख के संख खंख तुम हौ भीतर तें ।
कहा करो अभिमान धरयो हरि जौ निज कर तें ॥
बरनै दीनदयाल बिमल छबि छाई तन में ।
ऊँच नीच मुख लगो कहा भो बर कुल जनमे ॥ ३१ ॥

पाषाण

मूरुख हृदय कठोर लखि हारे करि करि मान।
तातें मज्जत जल विषे अहो सलज्ज पषान॥
अहो सलज्ज पषान बड़ी तुममें गरुआई।
जोरे तें जुरि जात अहैं ये द्वै अधिकाई॥
बरनै दीनदयाल कितौ करिए वह पूरुख।
जुरै न लाए हेत होत अतिसै जो मूरुख॥ ३२॥

बाण

हे सर परबस नहिं करो कुटिल धनुख सों संग।
सूधे हो, कहुँ फैंकिहै टूटि जाहिंगे अंग॥
टूटि जाहिंगे अंग संग तासों निबहै नहिं।
गुन पै राचे कहा कोटि रचना याके महिं॥
बरनै दीनदयाल कहाँ कारिख कहँ केसर।
तैसेई है संग बंक सूधे को हे सर॥ ३३॥

अंग-विशेष—तत्र रसना

रसना ए तो दसन हैं सुनि द्विजनाम न मोहि।
इन्हें न पंडित मानिए खंडित करिहैं तोहि॥
खंडित करिहैं तोहि रहो निज रूप बचाए।
तोतें बहुत कठोर जोर इन चने चबाए॥
बरनै दीनदयाल समुझि इनके सँग बस ना।
ऊपर उज्ज्वल रूप देखि मति मोहै रसना॥ ३४॥

नयन

सपनेहूँ ब्रजराज छबि लखी न तुम हे नैन ।
ताते भटके फिरत हौ लहौ कहूँ नहिं चैन ॥
लहौ कहूँ नहिं चैन रूप जग के सेमल से ।
छले गए नहिं कौन सुमन सुक केते छल से ॥
बरनै दीनदयाल गुनौ तुम अंतर अपने ।
ढके पलक के खलक रूप ह्वैहैं सब सपने ॥ ३५ ॥

श्रवन

खोए दिन बहु श्रवन हे सुनत वृथा बकबाद ।
सुने न हरिहर मधुर जस जासु सुधा सम स्वाद ॥
जासु सुधा सम स्वाद अमर पद देत सुने ते ।
थके धीर गुन गाय छके रस पाय न केते ॥
बरनै दीनदयाल काल तुम वादि बिगोए ।
अजहूँ सुनि करि प्यार कहा दिन डारत खोए ॥ ३६ ॥

दोहा

यह अन्योक्ति-सुकल्पद्रुम साखा तृतिय बखानि ।
विरचौ दीनदयाल गिरि कवि द्विजवर सुखदानि ॥ ३७ ॥

इति श्री-काशीनिवासी दीनदयालगिरि-विरचिते अन्योक्ति-कल्पद्रुम ग्रंथे तृतीया शाखा समाप्ता ॥

कैवर्तक—(सिंहावलोकन)

तारे तुम बहु पथिन को या नद्-धार अपार।
पार करो इहि दीन को पावन खेवनिहार॥
पावन खेवनिहार तजौ जनि क्रूर कुबरनै।
बरनैं नहीं सुजान, प्रेम लखि लेहु सुबरनै॥
बरनै दीनदयाल नाव-गुन हाथ तिहारे।
हारे को सब भाँति सुननिहै पार उतारे॥ १॥

पथिक—(सिंहावलोकन)

मारे जैहौ पथिक हे! या पथ हैं बटपार।
पार होन पैहौ नहीं मारि डारिहै वार॥
मारि डारिहै वार भजौ ये फिरैं अनेरै।
नेरै तुमको कोपि तकैं ज्यों बाज बटेरै॥
टेरै दीनदयाल सुनौ हित हेत तिहारे।
हारे परिहौ सखे! राखि धन कहे हमारे॥ २॥

राही खड़े असोक क्यों? बकुल ध्यान इहि बेल।
है डकैत छाया तजौ, लख्यो न याको खेल॥
लख्यो न याको खेल सिरसि पाकर बर चोटैं।
कोऊ नहिं सहकार अकेला लगिहौ लोटैं॥
बरनै दीनदयाल जटे इन जटी न काही।
जाहु चले या बेर कदम गहि पति लै राही॥ ३॥

सोई देस बिचारिकै चलिए पथी सुचेत।
जाके जस आनंद की कबिबर उपमा देत॥

कबिबर उपमा देत रंक भूपति सम जामैं ।
आवागमन न होय रहै मुदमंगल तामैं ॥
बरनै दीनदयाल जहाँ दुख सोक न होई ।
एहो पथी प्रवीन देस को जैए सोई ॥ ४ ॥

कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग ।
पथी लेहु मिलि ताहि तैं सबसों सहित उमंग ॥
सबसों सहित उमंग बैठि तरनी के माहीं ।
नदिया नाव सँजोग फेरि यह मिलिहै नाहीं ॥
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई ।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई ॥ ५ ॥

ग्राहैं प्रबल अगाध जल यामें तीछन धार ।
पथी पार जो तू चहै खेवनिहार पुकार ॥
खेवनिहार पुकार वार नहिं कोऊ साथी ।
और न चलै उपाव नाव बिन एहो पाथी ॥
बरनै दीनदयाल नहीं अब बूड़ै थाहैं ।
रहे महासुख बाय ग्रसन को भारी ग्राहैं ॥ ६ ॥

राही सोवत इत किते चोर लगैं चहुँ पास ।
तो निज धन के लेन को गिनैं नींद की स्वास ॥
गिनैं नींद की स्वास बास बसि तेरे डेरे ।
लिए जात बनि मीत माल ये साँझ सबेरे ॥
बरनै दीनदयाल न चीन्हत है तू ताही ।
जाग ! जाग रे ! जाग ! इतै कित सोवत राही ॥ ७ ॥

संबल जल इत लै पथी आगे नहीं निबाह।
दूर देस चलिबो महा मारू थल की राह॥
मारू थल की राह संग कोऊ नहिं तेरे।
सजग होय धन राख लगैं पथ चोर घनेरे॥
बरनै दीनदयाल कठिन बचिबो है कंवल।
सखे! परैगी जानि उतै, इत लै जल संबल॥ ८॥

जैए गैल सुछैल बनि पथी सुपंथ विचारि।
भ्रमौ न ठगिनी मारिहै तुम्हें ठगौरी डारि॥
तुम्हें ठगौरी डारि छीनि सबही धन लैहै।
महा-अंध बनकूप बीच या नीच छपैहै॥
बरनै दीनदयाल लाल! निज माल बचैए।
अहै ठगन को पुंज कुंज इत गुनिकै जैए॥ ९॥

सपने पथी सराय परि कहा रचत है राज।
भोर भए छुटिहै यहू तोहि सराय समाज॥
तोहि सराय समाज छूटि साथी सब जैहैं।
भठिहारी सों नेह करै मति तैं पछितैहै॥
बरनै दीनदयाल सोचि नीके चित अपने।
मनोराज पथ बीच कौन सुख पायो सपने॥ १०॥

मालिनी छंद

सुनहु पथिक भारी कुंज लागी दवारी।
जहँ तहँ मृग भागे देखिए जात आगे॥

फिरत कित भुलाने पाय ह्वैहैं पिराने।
सुगम सुपथ जाहू बूझिए क्यों न काहू ॥ ११ ॥
बहुत दिवस बीते गैल में तोहि मीते।
मुख रुख कुम्हिलाने बैठि ले या ठिकाने॥
अहह! सँग न साथी दूर है देस पाथी।
बिलम नहिं भलो जू संबलै लै चलो जू ॥ १२ ॥
बहुत बिधि दुकानैं हैं लगी तू न जानै।
बनिक बहु बिधा के सोहते रूप जाके॥
निपुन निरखि लीजै बस्तु मैं चित्त दीजै।
पथिक नहिं ठगावै, देखि तू रैनि आवै ॥ १३ ॥
निपट निसि अँधेरी नाहिं सूझै हथेरी।
बहु बिधि ठग घेरे मीत कोऊ न तेरे॥
पथिक इत न सोवै भूलि वित्तै न खोवै।
जगत रहि सुचेतै हौं कहौं तोहि हेतै ॥ १४ ॥
अभिनव घनस्यामैं ध्याउ आभा सु-जामैं।
बिसद बकुल-माला सोभती है बिसाला॥
द्विजगन हरषावैं ध्यान कै मोद पावैं।
पथिक नयन दीजै ताप को साँत कीजै ॥ १५ ॥

कुंडलिया

बीती सोवत रैनि सब होन चहै अब भोर।
पथी चेत कर पंथ कौ चिरियन लायो सोर॥

चिरियन लायो सोर देखि चहुँ ओर घोर बन।
चोर लगैं बरजोर सखे यहि ठौर राखि धन॥
बरनै दीनदयाल न गाफिल ह्वै, इत भीती।
साथी पाथी भए जाग अजहूँ निसि वीती॥ १६॥

हारे भूली गैल में गे अति पायँ पिराय।
सुनो पथी अब तो रह्यो थोरो सो दिन आय॥
थोरो सो दिन आय रहे हैं संग न साथी।
या बन हैं चहुँ ओर घोर मतवारे हाथी॥
बरनै दीनदयाल ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु भूलि भरमौ कित हारे॥ १७॥

चारौं दिसि सूझै नहीं यह नद-धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु खेवनिहार गँवार॥
खेवनिहार गँवार ताहि पर है मतवारो।
लिए भौंर में जाय जहाँ जल-जंतु अखारो॥
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुवीर नाम धरि धीर उचारो॥ १८॥

देखो पथी उघारिकै नीके नैन विवेक।
अचरजमय इहि बाग में राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक मूल ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहाँ अचाह एक, इक बहु फल चाखा॥
बरनै दीनदयाल खाय सो निबल बिसेखो।
जो न खाय सो पीन रहै अति अदभुत देखो॥ १९॥

देखो पथी अचंभ यह जमुनातट धरि ध्यान।
महि मैं बिहरैं कंज द्वै करैं मंजु अलि गान॥
करैं मंजु अलि गान नील खंभा तहँ दो पर।
पिक ध्वनि दामिनि बीच तहाँ सर हंस मनोहर॥
बरनै दीनदयाल संख पै सोम बिसेखो।
ता ऊपर अहि-तनै ताहि पर बरही देखो॥ २०॥

या बन में करि केहरी कूप गँभीर अपार।
है पहार की ओट में बसत एक बटपार॥
बसत एक बटपार उभै धनु सर संधाने।
ता पीछे इक स्याम नागिनी चाहत खाने॥
बरनै दीनदयाल इनै लखि डरिए मन में।
पथी सुपंथ बिहाय भूलि जनि जा या बन में॥ २१॥

फूली है सुखमामई नई लहलही जोति।
छई ललित पल्लवनि तें लखि दुति दूनी होति॥
लखि दुति दूनी होति चपल अलि यापै दो हैं।
लगे गुच्छ द्वै बीच वहै जन को मन मोहैं॥
बरनै दीनदयाल पथिक हे कित मति भूलो।
या तो मारक महाछली बिषबल्ली फूली॥ २२॥

मोहै चंपक छबिन तें पथिक न यहि आराम।
कुंद कली अवली भली लसत बिंब बसु जाम॥
लसत बिंब बसु जाम कीर खंजन सँग मिलिके।
सजैं भौंर तित लोल बोल बिलसैं कोकिल के॥

बरनै दीनदयाल बाग यह पथ को सोहै।
पथी गौन है दूरि, देख! बीचहि मति मोहै ॥ २३ ॥

चारों दिस लहरी चलैं बिलसै बनज बिसाल।
चपल मीन-गति ललित अति तापर सजै सिवाल॥
तापर सजै सिवाल हंस अवली सित सोहै।
कोक जुगल रमनीय निरखि सर मैं मति मोहै॥
बरनै दीनदयाल मकरपति यामें भारो।
त्रास मानि हे पथी! ग्रास करिहै लखि चारो ॥ २४ ॥

शांत-शृंगार-संगम

भूलै जोबन के न मद अरी बावरी बाम।
यह नैहर दिन चारि को अंत कंत सों काम॥
अंत कंत सों काम तंत सबही तजि दे री।
जाते रीझै नाह नेह नव तातें कै री॥
बरनै दीनदयाल भूष भूषन अनुकूलै।
चलि पिय गेह सनेह साजि, लखि देह न भूलै ॥ २५ ॥

गौने को दिन निकट अब होन चहै पिय मेल।
अजहूँ छुट्यौ न तोहि री गुड़ियन को यह खेल॥
गुड़ियन को यह खेल खेलि सब समय बिगारे।
सिखे नहीं गुन कछू पिया मन मोहनवारे॥
बरनै दीनदयाल सीख पैहै पिय भौने।
ए री भूषन साजि भद्र! दिन आवत गौने ॥ २६ ॥

तू मति सोवै री परी कहौं तोहि मैं टेरि।
सजि सुभ भूषन बसन अब पिया मिलन की बेरि॥
पिया मिलन की बेरि छाँड़ि अजहूँ लरिकापन।
सूधे दृग सों हेरि, फेरि मुख ना, दै तन मन॥
बरनै दीनदयाल छमैगो चूकन हू पति।
जागि चरन में लागि सभागिनि सोवै तू मति॥ २७॥

पिय तें बिछुरे तोहि री बिते बहुत हैं रोज।
पिय पिय पपिहा जड़ रटै तू न करै पिय खोज॥
तू न करै पिय खोज कितै दुरमति में भूली।
होन लगे सित केस कौन मद में अब फूली॥
बरनै दीनदयाल सुमिरि अजहूँ तेहि हिय तें।
है सब तेरी चूक नहीं कछु तेरे पिय तें॥ २८॥

औरी पिय सों सब तिया मिलीं महल में जाय।
तू बौरी पौरी धरे बाहर ही पछिताय॥
बाहर ही पछिताय रही अपनी करनी तें।
भलो लगी अति देर चली कौनी सरनी तें॥
बरनै दीनदयाल चूक तेरी यहि ठौरी।
अब तो लगे कपाट भई यह बेला औरी॥ २९॥

सोहै नाहिं निहारि तू एरी नारि गँवारि।
ये दूती हैं जार की तोहि बिगारनि-हारि॥
तोहि बिगारनि-हारि कहैं मधुरी मृदु बातें।
तैं सुनिकै ललचाइ लखै नहिं इनकी घातें॥

करिहैं दीनदयाल कंत सों तोहिं विछोहै ।
अंत धरम विनसाय कलंक लगाय विमोहै ॥ ३० ॥

पति के ढिग जनि जार पै मार नयन के वान ।
जानत सब व्यभिचार तव गुनत न नाह सुजान ॥
गुनत न नाह सुजान कृपामय मानि अपानी ।
बाँह गहे की लाज बिचारत स्वामि सुज्ञानी ॥
बरनै दीनदयाल वैन सुनि एरी मति के ।
है अपजस अघ अंत किए छल सनमुख पति के ॥ ३१ ॥

स्वामी सुंदर सीलजुत अपनो गुनी कुलीन ।
ताहि त्यागि पर नाह सठ सेवति कहा मलीन ॥
सेवति कहा मलीन हीन मति कुलटा बौरी ।
सुधासिंधु तजि मुधा फिरै मृग जल को दौरी ॥
वरनै दीनदयाल अरी हैहै वदनामी ।
जार गँवारहि भजे तजे बर अपनो स्वामी ॥ ३२ ॥

औरै सब जग के पुरुष अपने पति पर वार ।
जैसो तैसो निज भलो दुहुँ कुल तारनिहार ॥
दुहुँ कुल तारनिहार सुजस गति तासों लहिए ।
इतर संग भय होय खोय कीरति दुख सहिए ॥
बरनै दीनदयाल सील लाजहु या ठौरै ।
राखि राखि री राखि छाँड़ि जग के पति औरै ॥ ३३ ॥

तेरे ही अनुकूल पति कित बिनवै प्रिय बोलि ।
घट में खटपट मति करै घूँघट को पट खोलि ॥

घूँघट को पट खोलि देखि लालन की सोभा।
परम रम्य बुधि-गम्य जासु छबि लखि जग लोभा॥
बरनै दीनदयाल कपट तजि रहु पिय नेरे।
विमुख करावनिहार तोहि सनमुख बहुतेरे॥ ३४॥

येरी जोबन छनक है सुनि री बाल अजान।
निज नायक अनुकूल तें नहीं चाहिए मान॥
नहीं चाहिए मान देख यह समै सोहाई।
द्विजगन के कल गान स्याम सुधि देत धराई॥
बरनै दीनदयाल सीख सुनि सुंदरि मेरी।
विहरि विहारी नाह पाहँ तेहि छाहँ अयेरी॥ ३५॥

विछुरी तू बहु काल तें पौढ़ो पीतम पाहँ।
कछु बीती निसि नींद में कछु कलहन के माहँ॥
कछु कलहन के माहँ रही मुख फेरि कटोरी।
पिय हिय लाई नाहिं मोद नहिं पायो बौरी॥
बरनै दीनदयाल रही अब निसि ना किछु री।
तू प्यारे परजंक पौढ़ि अजहूँ लौं विछुरी। ३६॥

कासों पाती हौं लिखौं कापै कहौं सँदेस।
जे जे गे ते नहिं फिरे वहि पीतम के देस॥
वहि पीतम के देस बड़ो अचरज या भासै।
कहूँ न तम को लेस तहाँ विनु भानु प्रकासै॥
बरनै दीनदयाल जहाँ नित मोद-मवासो।
जनमादिक दुखद्वंद नहीं चर कहिए कासों॥ ३७॥

सती

पति की संगति री सती लै सुगती यहि आगि।
धरे सिंधौरा कर परै अब दे डगमग त्यागि॥
अब दे डगमग त्यागि भागि जनि चेति चिता कों।
जरे मरे सिधि पाउ कलंक न लाउ पिता कों॥
बरनै दीनदयाल बात यह नीकी मति की।
सुजस लोक, परलोक श्रेय, लै संगति पति की॥ ३८॥

(मोह, विवेकादि वर्णन)

मोह

जीवत है यहि जगत में देह मरे के अंत।
अहो मोह अति सिद्ध हैा तुममें कला अनंत॥
तुममें कला अनंत, संत गुनि अचरज भाखत।
सोक अनल के माहँ हृदय वारिज को राखत॥
बरनै दीनदयाल नेह मैं नचो नटीवत।
देखि परो नहिं, ज्ञान दिव्य, लोचन को, जीवत॥ ३९॥

काम

हरतन धरि कोपागि जग जारत प्रलै कराल।
तुम जारत जग-जनक मन अतन हँसत बिन काल॥
अतन हँसत बिन काल ज्वाल ससि-मुख तें व्यापी।
वे लीने कर शूल, फूल सर, तातें तापी॥
बरनै दीनदयाल जयो तेहि लीला पन करि।
हारि रहे सब भाँति लखत तब बल हर तन धरि॥ ४०॥

ह्याँ मति आओ मार तुम मारे रथी अपार।
यह हर-ईछन तीसरो तीछन बड़ो बिचार॥
तीछन बड़ो बिचार तुम्हैं लै छार करैगो।
सबही तो परिवार रोय बहु बार मरैगो॥
बरनै दीनदयाल काम! ह्वैहै तव क्या गति।
उतै रहौ, कहुँ बहो प्रान लै, आओ ह्याँ मति॥ ४१॥

क्रोध

जेहि मन तें उदभव भयो जेहि बल जग में सूर।
तेहि निसि दिन जारत अहो दुसह कोप गति कूर॥
दुसह कोप गति कूर बड़ो कृतघन जग मों है।
प्रथम दहत है आप बहुरि दाहत सबको है॥
बरनै दीनदयाल कोप तू सुनि सब जन तें।
अजस होत जनि दहै भयो उदभव जेहि मन तें॥ ४२॥
भाजत लै भा, लखि तुम्हैं इन नैनन के ईस।
करत महा तम, क्रोध तुम! कौन करै तव रीस॥
कौन करै तव रीस, एक गुन में जग लावत।
अधर, दसन, भ्रू, नाक, निमिष में सबै नचावत॥
बरनै दीनदयाल घोर घन लौं छन गाजत।
ए हो कोप प्रचंड कौन नहिं तुम तें भाजत॥ ४३॥

लोभ

तुमरी लोभ! कलानि को अचरज कहैं प्रवीन।
ज्यों ज्यों बय ग्रासै जरा त्यों त्यों होत नवीन॥

त्यों त्यों होत नवीन सकल जन को तुम देखत।
खरे रहो सब तीर न कोऊ तो तन पेखत॥
बरनै दीनदयाल अखिल महि तो मति घुमरी।
लही न पुरी बराट कला यह चूकति तुमरी॥ ४४॥

अँचयो कुंभज नीरनिधि सो सिध बड़े कहात।
तुम जग जीवन-निधि-निकर सीकर सम चटि जात॥
सीकर सम चटि जात लोभ तव प्यास न जाई।
तुम अकास, ऋषि रेनु, कहा तिन केरि बड़ाई॥
बरनै दीनदयाल लोक तिहुँ ग्रसिकै पँचयो।
तऊ भूख नहिं प्यास गई, सत सागर अँचयो॥ ४५॥

आसा की डोरी गरे बाँधि देत दुख षोभ।
चित पितु को बंदर कियो अहो कलंदर लोभ॥
अहो कलंदर लोभ छोभ दै नाच नचावत।
जदपि निरादर चोट समुझि अतिसै दुख पावत॥
बरनै दीनदयाल लोग सब लखैं तमासा।
भरमावै घर घरहिं तऊ नहिं पूरति आसा॥ ४६॥

दंभ

देखो कपटी दंभ को कैसो याको काम।
बेचनहारो बेर को देत दिखाय बदाम॥
देत दिखाय बदाम लिए मखमल की थैली।
बाहर बनी विचित्र वस्तु अंतर अति मैली॥

बरनै दीनदयाल कौन करि सकै परेखो ।
ऊँची बैठि दुकान ठगै सिगरो जग देखो ।। ४७ ।।

अभिमान

करनी जंबुक जून ज्यों, गरजनि सिंह समान ।
क्यों न डरै जग लखि तुम्हैं अहो बीर अभिमान ।।
अहो बीर अभिमान धरा को धीर धरैगो ।
कोप करौ न प्रचंड सबै ब्रह्मंड जरैगो ।।
बरनै दीनदयाल गिरा-भट तो मति बरनी ।
धरनीधर लौं गई नई यह अदभुत करनी ।। ४८ ।।

विवेक

सुनिए बैन विबेक जू हो नृप धीरज धाम ।
जौ लगि जीवत काम यह तौ लगि होय न काम ।।
तौ लगि होय न काम बड़ो खल है रिपुदल मैं ।
याकी कला अनेक सकल जग जीते छल मैं ।।
बरनै दीनदयाल बिरति सों मिलि हित गुनिए ।
भनै जु मंत्री साधु सीख साँची सो सुनिए ।। ४९ ।।
करिए बेगि विबेक जू शांति प्रिया को सोध ।
सकुल कृतारथ होहुगे उपजत पूत प्रबोध ।।
उपजत पूत प्रबोध बजैगी अनँद-बधाई ।
धन्य कहैंगे धीर रहैगी कीरति छाई ।।
बरनै दीनदयाल जगत के जाल न परिए ।
मिलि नियमादि सखान शांति सों नित हित करिए ।। ५० ।।

सुनिए भूप बिवेक तुम बासुदेव अवतार।
किय मन पितु बसुदेव को वंधन तें उद्धार॥
बंधन तें उद्धार कियो. कामादि कंस हनि।
जनकहिं दै आनंद कृतारथ कुलहि किए धनि॥
वरनै दीनदयाल सुमति सों नित हित गुनिए।
जातें पूत प्रबोध प्रकट ह्वै सो सिख सुनिए॥ ५१॥

विचार

सुनिए वैन विचार तुम या जग होते जौ न।
तो यह जीव मलीन को करत कृतारथ कौन॥
करत कृतारथ कौन ख्वार इहि मारहि मारत।
को करिकै निरधारहिं सार असार बिचारत॥
वरनै दीनदयाल वहै बिधि गुरुगम गुनिए।
जाते होय प्रबोध उदै सो सम्मति सुनिए॥ ५२॥

विराग

एहो त्याग मृगेस! तुम विन यहि तन-वनराज।
करत स्यार कामादि अब, ह्वै स्वतंत्र सिरताज॥
ह्वै स्वतंत्र सिरताज फिरत कूकत कै फूले।
किन गरजत घननाद, पराक्रम कित वह भूले॥
वरनै दीनदयाल त्रास जौलौं नहिं देहौ।
तौलौं नहिं ये क्रूर कढ़ैंगे हिय तें एहौ॥ ५३॥

संतोष

एहो तोष कुलोभ तम को तौलौं है बास ।
जौलौं नहिं रवि रूप तुम प्रगटत ह्वै अकास ॥
प्रगटत ह्वै अकास लाभ लघु मुद जुगुनू के ।
दुख दीनता मलीन उलूक रहैं ढिग ढूके ॥
बरनै दीनदयाल लोभ को कब भय दैहो ।
तुम बिन सुख नहिं रंच सुनो संतोष अए हो ॥ ५४ ॥

छमा

बानी कटु सुनि कोप की छमा ! गहौ न गिलानि ।
कहा हानि मृगराज की भूँकत जौ लखि स्वान ॥
भूँकत जौ लखि स्वान हारि मानैगो आपै ।
वैठि रहो हे वीर धीर तुम बोलत कापै ॥
बरनै दीनदयाल बात बुध बिमल बखानी ।
कीजै कछू न सोच सठन की सुनि कटु बानी ॥ ५५ ॥

मन

हे मन ये कामादि तव तनै नरक की खानि ।
तुम जानत सुखदानि हैं ये निस दिन दुखदानि ॥
ये निस दिन दुखदानि मीत बनि प्रीत प्रकासैं ।
अंतर अरि हैं अंत छीनि तो निज धन नासैं ॥
बरनै दीनदयाल संग इनके है छेम न ।
सुत विवेक तें आदि करो तिन तें हित हे मन ॥ ५६ ॥

हे मन बद मद मार को कछु न करो इतबार।
ये तो दैतन दैत हैं सुभ गुन भच्छनिहार॥
सुभ गुन भच्छनिहार कुमति रजनी मैं गाजैं।
होय प्रबोध प्रभात नहीं तब ते खल राजैं॥
बरनै दीनदयाल जगत मैं तौ लगि छेम न।
जौ लगि नहिं ये कूर कढ़ैंगे हिय तें हे मन॥५७॥

प्रबोध प्रशंसा

भारी भूपति जीव यह रह्यौ अखिल को ईस।
भयो भूल बस कीट सम निज पद परयो न दीस॥
निज पद परयो न दीस ताहि सुर सीसहि चाढ़यो।
हे प्रबोध तुम धन्य जगत-सरि बूड़त काढ़यो॥
बरनै दीनदयाल वेद हैं तव जसकारी।
'चिदानंद संदोह' दियो सिंहासन भारी॥ ५८॥

(अपर प्रसंग वर्णन)

विधि-विडंबना

करनी विधि की देखिए अहो न बरनी जाति।
हरनी के नीके नयन बसै बिपिन दिन राति॥
बसै बिपिन दिन राति बरन बर बर ही कीने।
कारी छबि कलकंठ किए फिरि काक अधीने॥
बरनै दीनदयाल धीर धन तें बिन धरनी।
बल्लभ बीच वियोग, बिलोकहु बिधि की करनी॥ ५९॥

आए काम न साँकरे रच्छक खरे अपार।
रतनाकर अरु चंद के हुते सकल हितकार॥
हुते सकल हितकार बिबुध बर बीर बाँकुरे।
और सूलधर ईस गदाधर धीर ठाकुरे॥
बरनै दीनदयाल रहे सब सखा सोहाए।
कुंभजात अरु राहु ग्रसत कोउ काम न आए॥ ६० ॥

द्वैज दिवस के चंद को बंदत सबै सप्रीति।
कहत कलंकी पूर सखि अहो कूर जग रीति॥
अहो कूर जग रीति बढ़े पर चौगुन दूषैं।
मिलै कुटिल कबहूँक ताहि महिमा करि भूषैं॥
बरनै दीनदयाल न प्रापति ह्वै दिन-दस के।
सबै करैं बहुमान जथा ससि द्वैज दिवस के॥ ६१ ॥

जाको खोजत सो मिलै यामैं संसय नाहिं।
बिरचै माखी मधु सुधा भीषन बन के माहिं॥
भीषन बन के माहिं सिंह गजराज बिदारैं।
मुकता मिलैं मराल, मिलिंद सरोज बिहारैं॥
बरनै दीनदयाल स्वातिजलऊ पपिहा को।
मिलै भली बिधि आय जौन जग खोजत जाको॥ ६२ ॥

भूप-कूप-श्लेष

कूपहिं आदर उचित है नहीं गुनिन को हेय।
अंतर गुन को ग्रहन करि फिरि फिरि जीवन देय॥

फिरि फिरि जीवन देय गुनी गुन वृथा न जावै ।
अति गभीर हिय दुहू झुके तें अमृत लखावै ॥
बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहिं ।
जो घट अरपन करै ताहि में ममता कूपहिं ॥ ६३ ॥

सज्जन-ढेकुल-श्लेष

गुन को गहि यहि खेत में नमैं सुबंसज दोय ।
कृसि तन जीवन देत हैं पीछे गुरुता होय ॥
पीछे गुरुता होय कूप तें आदर पावैं ।
ऊँच कहैं सब कोय अमृत घट पुन्य सोहावैं ॥
बरनै दीनदयाल धन्य कहिए जग उनको ।
सहि दुख, सुख दैं सवै, सरल अति हैं गहि गुन को ॥ ६४ ॥

सूक्ष्मालंकार

कासों हनिए कोप को, कापै पैए ज्ञान ।
गुरू मौन सैनहिं कह्यौ छिति छ्वैके धरि कान ॥
छिति छ्वैके धरि कान दसन रवि फेरि लखाए ।
देखि केस की ओर सुनैन कपाट लगाए ॥
बरनै दीनदयाल सिख्य गुरु की करुना सों ।
समुझि लई सब सैन वैन तिन कह्यौ न कासों ॥ ६५ ॥

मुद्राऽलंकार

कोई सारस नहिं मिलै मदन बान के बीच ।
मीन केतकी कीच फँसि कुंद भई मति नीच ॥

कुंद भई मति नीच निवारी जाइ नहीं है।
जुही समग्री, स्याम जपा कर नाम सही है॥
जाती दीनदयाल बिमल बेला सब्बोई।
ताहि चेत कर वीर धीर वरनै सब कोई॥ ६६॥

सो नाहीं नर सुघर है जो न भजै श्री रंग।
पारावार अपार जग बूड़त भौंर कुसंग॥
बूड़त भौंर कुसंग ठौर तामहिं नहिं पावै।
सीसहु देत डुबाय भलो हाथहु न उठावै॥
बरनै दीनदयाल रूप हरि को तिहि माहीं।
ध्यान धरै दृढ़ नाव जानि, बूड़त सो नाहीं॥ ६७॥

व्याजस्तुति

कासी हाँसी मुनि करैं सुनि करनी तव एक।
दासी तपसी एक सी दै गति बिना विवेक॥
दै गति बिना विवेक, एक या और कुचाली।
अरपै कोऊ कोटि तिन्हैं लै करो कपाली॥
बरनै दीनदयाल काय तिहुँ तिनकी नासी।
परे सरन जे आय कहा यह कीन्ही कासी॥ ६८॥

सुरधुनि बंकित क्यों चलै चकित सुकबि यहि हेत।
अहो होत लज्जित नहीं खलन ईस-पद देत॥
खलन ईस-पद देत नहीं परिनाम बिचारै।
बाँधै गहि लै जटा न वे उपकार निहारै॥

बरनै दीनदयाल परी सब तो सिर पै सुनि।
करी अकरनी जौन भोग ताको री सुरधुनि ॥ ६६ ॥

प्रेम-पंचक। सवैया

छल बंचक हीन चलै पथ याहि, प्रतीति सुसंबल चाहनो है।
तहँ संकट वायु, वियोग लुवैं, दिल को दुख-दाव में दाहनो है॥
नद सोक, बिषाद कुग्राह ग्रसैं, खर धारहिं तो अवगाहनो है।
हित दीनदयालु महा मृदु है कठिनै अति अंत निवाहनो है ॥७०॥

सजि सेज सुबारि बबूलन की तहँ मीत मतंग सोवावनो है।
अरु नीर रखै सिकता घट में, मकरी पट सिंह बझावनो है॥
सुगमै बरु बारिधि पैरिबो है, पय ऊपर तारिबो पाहनो है।
हित दीनदयालु महा मृदु है कठिनो अति अंत निवाहनो है ॥७१॥

रसना अहि की गहिवो सुगमै वन कंटक गौन उबाहनो है।
गिरि तें गिरिबो, भिरिबो गज तें, तिरबो बड़वागि को थाहनो है॥
रन एक अनेकन तें जु लरै तिमि ताहि न सूर सराहनो है।
हित दीनदयालु महा मृदु है कठिनो अति अंत निवाहनो है ॥७२॥

पछलत्त तुरीन की हैं सुगमै, नख नाहर को हठि गाहनो है।
बिष-नीर की पीर को धीर सहै चढ़ि चीर सरीरहि दाहनो है॥
मरु कूप के बीच फँसे सुगमै, बरु मीच तें बैर बिसाहनो है।
हित दीनदयालु महा मृदु है, कठिनो अति अंत निवाहनो है ॥७३॥

खल निंदक सूकर भै जहँ है, गरजै गज मत्त उराहनो है।
कुलकानि अपार पहार जहाँ गुरु लोग सँकोच कुपाहनो है॥

जल भौंर भरी बिपदा की सरी तहँ पंक कलंकहिं गाहनो है।
हित दीनदयालु महा मृदु है कठिनो अति अंत निबाहनो है।.७४॥

दोहा

पंचक यह है प्रेम को रंचक चित जो देइ।
छल बंचक बंचै न तिहि दीनदयाल जु सेइ॥ ७५॥

ग्रंथांते मंगलम्

कुंडलिया

मेटनहारे बिघन के बिघन बिनायक नाम।
रिधि सिधि बिद्या उदर ते लंबोदर अभिराम॥
लंबोदर अभिराम सकल सुभ गुन उर धारे।
और गहन के हेत देत मनु दंत पसारे॥
बरनै दीनदयाल भरयौ अजहूँ लौं पेंट न।
वक्रतुंड करि काह चहत ब्रह्मांड समेटन॥ ७६॥

दोहा

यह अन्योक्तिसुकल्पद्रुम साखा वेद बखानि।
बिरची दीनदयाल गिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥ ७७॥
कुंडलिया, सु घनाच्छरी, सुखद सु दोहा वृत्त।
हरै सवैया मालिनी मिलि पंचामृत चित्त॥ ७८॥
यह कलपद्रुम ग्रंथ में मधुर छंद सुचि पंच।
पंचामृत हिय पान करि जड़ता रहै न रंच॥ ७९॥
कर छिति निधि ससि साल में माघ मास सित पच्छ।
तिथि बसंत युत पंचमी रवि वासर सुभ स्वच्छ॥ ८०॥

सोभित तिहि औसर बिषे वसि कासी सुखधाम।
बिरच्यो दीनदयाल गिरि कलपद्रुम अभिराम ॥ ८१ ॥
अभिमत फलदातार यह बिविध अर्थ को देत।
जौ धुनि गुनि कवि मुदित मन पढ़िहैं प्रेम समेत ॥ ८२ ॥
उपालंभ अरु नीति युत प्रीति रसहु सुविराग।
विविधि भाँति सुमनस! लसैं यामें सुमन सराग ॥ ८३ ॥
सोभित अतिमति थल सु यह सुमन सहित सब काल।
अरप्यो दीनदयाल गिरि बनमालिहिं सु-रसाल ॥ ८४ ॥

इति श्री-काशीनिवासी दीनदयालगिरि-विरचिते अन्योक्ति-
कल्पद्रुम ग्रंथे चतुर्थी शाखा समाप्ता ॥